UNIVERSAL LIBRARY

OU_180349

UNIVERSAL LIBRARY

श्री

ला

का

यह

ान

है।

ना

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H821/T16P Accession No. G.H. 861

Author टंडन, प्रेमनारायण।

Title प्रेरणा। 1945

This book should be returned on or before the date last marked below.

श्री

ला

का

यह

ान

ा

प्रेरणा

[पाँच एकांकी]

लेखक

प्रेमनारायण टंडन,

एम० ए०, सा० र०

अप्रैल १९४५

बारह आना

प्रकाशक
विद्यामंदिर, चौक,
लखनऊ

Checked 1965

समर्पण

प्रिय तत्वदर्शी
को

Checked 1969

मुद्रक
वर्द्धमान-प्रेस,
अमीनुद्दौला-पार्क, ल

निवेदन

प्रस्तुत संग्रह के प्रथम दो एकांकी प्रसिद्ध अँगरेजी लेखकों—श्री जे० ए० फर्गुसन और श्री एच० ब्रिगहाउस—की रचनाओं के स्वतंत्र अनुवाद हैं। भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए दोनों के पात्र-पात्रियों के नामों, स्थानों और स्थितियों में आवश्यक परिवर्तन किया गया है। प्रथम एकांकी अप्रैल' ४० की 'सरस्वती' में और द्वितीय अप्रैल' ४१ की 'वीणा' में, दोनों कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं।

शेष तीनों रचनाएँ इसी वर्ष की हैं। कथानक की न्यूनता के कारण अभिनयोचित क्रियाशीलता का प्रायः इन सभी में अभाव है, तथापि पात्रों की वर्गगत विशेषताओं के संबंध में किए गए संकेत पाठकों को संभवतः रोचक ही लगेंगे।

नाटक के क्षेत्र में मेरा यह प्रथम प्रयास है। अतएव संकोच के साथ ही प्रस्तुत संग्रह आलोचकों के सामने रख रहा हूँ।

रानीकटरा, लखनऊ
१५-४-४५

प्रेमनारायण टंडन

सूची

	नाटक				पृष्ठ
१.	माता	...	....	...	५
२.	प्रेमी	....	....	....	२०
३.	कनवेसिंग	....	....	....	३८
४.	प्रेरणा	....	...	...	५४
५.	बचपन के साथी	...	....	....	६६

माता

[स्थान—दुर्ग से एक मील की दूरी पर एक छोटा-सा मकान। पगडंडी उसी के पास से होकर जाती है।

समय—छठी शताब्दी का अन्त। हूणों के आक्रमण हो चुके हैं। विजयी हूण विद्रोहियों के नेताओं की हत्या करने में पाशविक क्रूरता दिखा रहे हैं।

मकान में—बाहर का कमरा बन्द है। उसी में सरला बेचैनी से घूम रही है। कभी वह दरवाजे की दरार से बाहर की ओर देखती है, कभी एक तख्त पर उदास बैठी हुई स्त्री की ओर देखती है।

मकान का कमरा घरवालों की दरिद्रता का परिचय देता है। सजाने का सामान तो दूर, बैठने के तख्त पर भी बिछाने को कुछ नहीं है। सड़क की तरफ इसमें एक दरवाजा और दो खिड़कियाँ हैं। बाईं तरफ़ एक छोटी-सी खिड़की और सामने एक दरवाजा घर में जाने के लिए है।

सरला युवती है, बड़ी सुन्दर, पर दरिद्रता की सताई हुई। बड़ी बेचैनी से वह बाईं दीवार की खिड़की से बाहर की ओर छिपकर सतर्कता से देखती और फिर टहलने लगती है।]

सरला—कैसी भयंकर रात है बाहर !

स्त्री—क्या अब भी पानी पड़ रहा है ?

सरला—हाँ, बड़े ज़ोर से। और अन्धकार तो इतना घना है कि आगे कुछ दिखाई ही नहीं देता।

स्त्री—(ठंडी साँस लेकर) यह तो अच्छा है अपने लिए।

[सरला फिर अनमनी होकर इधर-उधर टहलती है। अन्त में, व्याकुल होकर रुक जाती है और स्त्री की ओर देखने लगती है।]

सरला—(शीघ्रता से) क्या मैं बत्ती जलाकर खिड़की में रख दूँ ?

स्त्री—अभी से क्यों ? अभी तो कोई खटका हुआ नहीं मालूम पड़ता। (कुछ उत्सुकता और आवेश में आकर) क्या कोई संकेत तुझे मिला है ?

सरला—(निषेध-सूचक सिर हिलाती हुई) नहीं, परन्तु खिड़की का प्रकाश उन्हें बतला देगा कि यहाँ सब ठीक है।

स्त्री—(कुछ सोचती हुई) नहीं, नहीं। प्रकाश हमें उसी समय करना चाहिए जब संकेत मिल जाय; पहले नहीं।

सरला—परन्तु ऐसी भयंकर रात में जब मूसलधार पानी पड़ रहा हो, घंटों कोई संकेत किया करे, तो क्या सुनाई भी देगा ?

स्त्री—(बड़े स्नेह से सरला की ओर देखती हुई) नहीं बेटी। इतनी उतावली मत बन। हमें वही करना है जो वह

कह गया है। अँगीठी में कुछ कोयला डाल दे और यहाँ मेरे पास आकर बैठ।

सरला—(अधिक व्यग्र होकर) नहीं, मैं नहीं बैठूँगी। (आवेश में) मेरे अन्दर कोई मुझे जता रहा है कि आज रात को हम पर जैसे वज्र गिरेगा। आह! यह सन-सन बहती हुई हवा जान पड़ती है, घर के चारों ओर सिसकियाँ लेती फिर रही है। मुझे लग रहा है जैसे कोई निरीह प्राणी मेरे द्वार पर आया हो और मैं उसे शरण में लेने से इनकार कर रही हूँ।

स्त्री—(स्नेह से झिड़कती हुई) यह क्या बक रही है? जो मैं कहती हूँ वह कर। पहले आग में कोयला डाल दे थोड़ा-सा।

सरला—(अँगीठी की ओर बढ़ती हुई) जब से मैं... (कुछ सुनकर) यह क्या हुआ?

[दोनों साँस रोककर क्षण भर सुनती हैं और एक दूसरे की ओर देखती हैं।]

स्त्री—कुछ नहीं; हवा थी। (धीरे से) जो बाहर हैं उनके लिए कितनी दुःखद होगी यह रात!

[सरला चुपचाप अँगीठी में कोयला डालती है, कोई उत्तर नहीं देती।

स्त्री—(कुछ याद करके) क्या तूने दिन में इधर से आदमियों को जाते देखा था आज?

सरला—सबेरे तो कुछ लोग इधर से गये थे, पर नौ

बजे के बाद फिर कोई नहीं गया। हाँ, चार बजे एक घुड़सवार इधर से घोड़ा दौड़ाता हुआ गया था।

स्त्री—और कोई नहीं ?

सरला—(सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत करती हुई) नहीं, भयानक श्मशान-सा सुनसान इधर रहा है। (उत्सुकता से स्त्री की ओर देखती हुई) क्या तुम समझती हो, वे आयेंगे अवश्य ?

स्त्री—यह मैं कैसे कह सकती हूँ ? मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ कि पाँच दिन हुए, जब वह यहाँ भोजन करने और उन लोगों को जो बाहर छिपे हुए हैं, लेने के लिए आया था। तब से पाँच दिन और पाँच राते बीत गईं, मुझे कोई पता नहीं मिला। केवल अनुमान से कहा जा सकता है कि आज रात को वह अवश्य आने का प्रयत्न करेगा। परन्तु आज दिन भर इधर से किसी का न आना ..समझ नहीं पड़ता .. कुछ तो पता लगना चाहिए था।

[सहसा एक आवाज होती है। दोनों कान लगाकर सुनने लगती हैं।]

स्त्री—(बड़ी प्रसन्नता से) बेटी, शीघ्र ही प्रकाश का प्रबन्ध करो।

सरला—(शंका करती हुई) परन्तु यह शब्द तो घर के पीछे की तरफ हुआ है। इधर से तो.....

स्त्री—(उसे रोककर) जो मैं कहती हूँ सो कर। सम्भव है, दूसरी ओर शत्रुओं का भय हो।

[बत्ती जलाकर खिडकी पर रख दी जाती है । सरला शीघ्रता से दरवाजे के पास जाकर खड़ी हो जाती है और उसे खोलने लगती है ।]

स्त्री—(दरवाजा खोलने से रोककर) अभी नहीं, अभी नहीं । क्या इस बत्ती को बिजली की तरह चमकती हुई छोड़कर तू दरवाजा खोल देना चाहती है जिससे एक मील पर खड़ा हुआ मनुष्य भी हमें देख ले । कौन जानता है, शत्रु घात में लगे हों ? बत्ती बुझा दे पहले और आग भी ढक दे ।

[सरला शीघ्रता से बत्ती बुझाती है, आग ढकती है । कमरे में अंधकार-सा हो जाता है । तब सरला धीरेसे दरवाजा खोलती है । एक युवक अन्दर आता है । दरवाजा फिर बन्द कर दिया जाता है । सरला युवक से सटकर खडी हो जाती है ।]

सरला—सतीश ! मेरे प्यारे तुम भीगे हुए हो ? सर्दी खा रहे हो ?

सतीश—पुल पर पहरा था; नदी तैर कर आया हूँ ।

[स्त्री ने इतने समय में बत्ती जला दी और आग भी खोल दी ।]

स्त्री—पुल ! पहरा क्या ?

सतीश—हाँ, जबरदस्त पहरा । और.....

स्त्री—तब तुम्हारे साथी कहाँ छिपे हैं ?

सतीश—वे सब पहाड़ी के उस पार बाईं ओर के जंगल . ...

स्त्री—(जैसे चेतकर सरला की ओर इशारा करके उसकी बात काटती हुई) हाँ, तो.....

सतीश—(उसकी शंका समझकर) माँ ! तुम.....

स्त्री—(फिर बात काटकर) हाँ, बेटी सरला, भोजन इसके और इसके साथियों के लिए शीघ्र ले आ।

[सरला आँगनवाले दरवाजे से होकर भीतर चली जाती है।]

सतीश—माता जी ! मुझे तो तुम्हारी बातों पर आश्चर्य होता है। तुम सरला पर विश्वास नहीं करतीं ? हमारी बातें वह कभी किसी से नहीं कह सकती, नहीं कह सकती।

स्त्री—अभी वह लड़की है, उसके धैर्य की अभी परीक्षा नहीं हुई है। कौन जाने, उससे क्या पूछ लिया जाय ?

सतीश—परन्तु डरने की तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि मैं तुम्हें बता रहा था कि मैंने अपने साथियों को कहाँ छोड़ा है। वे कहाँ मिलेंगे, यह थोड़े ही बताता !

स्त्री—वे कहाँ हैं और तुझे कहाँ मिलेंगे ?

[सतीश धीरे धीरे समझा देता है। स्त्री कुछ चिन्तित हो जाती है।]

स्त्री—ये बातें सरला को बताने की नहीं हैं। उसे मत बताना।

[सतीश आग के पास बैठकर तापने लगता है। उसकी मा भी उसी के पास बैठ जाती है।]

सतीश—(एक साँस लेकर) ऐसी भयानक रात में यदि

तापने के लिए आग हो और शान्तिपूर्वक रहने के लिए एक मकान तो कितना सुख मिले !

स्त्री—क्या तू रात भर रुक नहीं सकता ?

सतीश—(फिर साँस लेकर) सबेरा होने से पहले ही मैं यहाँ से मीलों दूर पहुँच जाऊँगा ?

[सरला आती है]

सरला—इतनी दूर तुम आये और (आश्चर्य से) किसी ने देखा नहीं !

सतीश—कौन कह सकता है किसी ने देखा या नहीं ; चारों तरफ़ तो शत्रु फैले हुए हैं ।

[सरला तख्त पर भोजन सजाती है । बड़े प्रेम से वह सतीश की ओर देखती है और माता की आँख बचाकर सतीश उसकी ओर । बूढ़ी मा जैसे किसी चिन्ता में है । सहसा जोर से कोई दरवाजा पीटता है और कहता है—खोलो, खोलो ।]

माता—(चौंककर) बेटा ! उस कोने में घास पड़ी है । छिप जा उसी के नीचे । जल्दी से मेरे बेटे !

[खटखटाना बढ़ जाता है । कोई जोर से कहता है—खोलो । फौरन सतीश की माता उसकी सब चीजों को छिपा देती है । सतीश छिप जाता है । माता दरवाजे के पास जाती है ।]

माता—(ज़ोर से) कौन है ? क्या चाहते हो ?

आवाज़—दरवाज़ा खोलो ।

[माता दरवाजा खोलती है। तीन-चार सशस्त्र व्यक्ति घुस आते हैं। सबसे आगे विद्रोही सेनापति है।]

एक व्यक्ति—(चारों ओर देखकर) अरे, चिड़िया उड़ गई !

दूसरा—(उपेक्षा की हँसी हँसता हुआ) नहीं भाई ! (भोजन की ओर इशारा करके) जान पड़ता है, हम लोगों ने उनके भोजन में बाधा डाली है। यहीं कहीं होंगे महाशय ! ढूँढ़ लो जल्दी से।

माता—(दृढ स्वर में) इस मकान में मैं ही अकेली रहती हूँ और मैं ही भोजन करने जा रही थी। आप चाहते क्या हैं ?

[सेनापति केवल 'हूँ' कर देता है। सिपाही इसी समय सरला को पकड़ लाते हैं। उसके हाथ में भोजन का पात्र है।]

माता—देख लीजिए। यह मेरे भाई की लड़की है और मेरे लिए भोजन ला रही थी।

सेनापति—(उपेक्षा से गर्दन हिलाता हुआ) मैं सब देख रहा हूँ।

[सिपाही खोजकर सतीश को पकड़ लाते हैं।]

सेनापति—(स्त्री से) कहिए श्रीमतीजी ! यह शायद आपकी बहन का लड़का है ! (जोर से) याद रक्खो, मैंने, कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं और किसी को छोड़ना तो मैं जानता ही नहीं हूँ। और यदि यह मेरे प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर नहीं देगा तो अवश्य मैं इसे फाँसी पर चढ़वा दूँगा।

[सतीश जमीन पर बैठाया जाता है। दो सिपाही उसके पास खड़े होते हैं। एक सिपाही दरवाजे पर पहरा देता है। विद्रोही सेनापति तख्त पर बैठ जाता है। तख्त के एक कोने पर उसका कर्मचारी बैठता है।]

सरदार—मुझे पता लगा है कि मेरे विरोधी जहाँ छिपे हैं उस स्थान का पता तुम्हें है। ठीक है न ?

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता।]

सरदार—देखो, तुम भी कान खोलकर सुन लो और इस घरवाले भी कान खोलकर सुने कि यदि तुम मेरे प्रश्नों का समुचित उत्तर दे दोगे तो तुम्हें किसी तरह का कष्ट नहीं दिया जायगा।

[सतीश कोई उत्तर नहीं देता।]

सरदार—(धीरे से) देखो, सतीश, हमारा काम कर देने से तुम्हारा बड़ा लाभ होगा। सोने-चाँदी से तुम लाद द ये जाओगे, ऊँचा पद भी मिलेगा।

[सतीश फिर चुप रहता है।]

सरदार—(आवेश में जोर से) काट लो इस गवे की जीभ।

सतीश—(शांत स्वर में) मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता।

सरदार—(शान्त होकर) देखो, दुनिया में इस तरह की नादानी से काम नहीं चलता। केवल इतना बता देने से ही तुम मुक्त कर दिये जाओगे।

[सतीश चुप रहता है।]

सरदार—सतीश ! तुम्हें मुझसे डर तो नहीं लग रहा है, जो इस तरह चुप हो ?

सतीश—(घृणा से थूककर) डर !

सरदार—(क्रुद्ध होकर) नीच, तेरी यह मजाल !! ले जाओ इसे बाहर। दूसरी तरह इससे पेश आना होगा।

[सतीश को सिपाही बाहर ले जाते हैं।]

सरदार—मैंने दुनिया देखी है। जीवन का अनुभव भी मुझे अधिक है। परन्तु ऐसा मूर्ख युवक मैंने कभी नहीं देखा। यह तो सरासर मूर्खता है। (सिपाहियों से) लाओ उस बुढ़िया को।

[सतीश की माता सतीश की जगह पर बैठाई जाती है।]

सरदार—देखिए श्रीमतीजी, यदि आप अपने पुत्र का कल्याण चाहती हैं तो मेरी बातों का उत्तर ठीक ठीक दें। आप मेरा विश्वास रक्खें। आपके पुत्र का जीवन मेरे हाथ में है। मेरा विश्वास रक्खें। प्रश्नों का उत्तर मिल जाने पर मैं आपके पुत्र को छोड़ दूँगा। मेरा विश्वास रक्खें।

माता—मैं किसी का विश्वास नहीं करती।

सरदार—परन्तु मेरा विश्वास तो करना ही होगा। (धीरे से) अपने पुत्र के प्राण बचाने के लिए तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे दो।

[माता चुप रहती है। सरदार आश्चर्य से उसकी ओर देखता है। फिर घृणा से पुत्र की ओर इशारा करके माता को इस तरह देखता है जैसे उसे धिक्कार रहा हो। अन्त में कुछ सोचता हुआ क्रोध में कहता है।]

सरदार--शायद तुझे यह मालूम हो गया होगा कि तेरी यह मक्कारी पुत्र के लिए कितनी हानिकर होगी। (अपने कर्मचारी से) देखते हो, कैसी मा है यह जो अपने बच्चे के प्राणों की परवा नहीं करती! (हँसता है) कैसी मूर्ख है! जिसको दूध पिलाकर पाला है उसी के प्राण हर रही है!! पागल!!!

[सरदार हँसता है। एक बार अपने कर्मचारी की ओर देखकर सतीश की माता की ओर देखता है, जैसे अपने शब्दों का प्रभाव जमाना चाहता है।]

सरदार—(कोमल स्वर में) याद हैं तुझे वे दिन जब सतीश बच्चा था और अँधेरे से डरकर तेरी ओर हाथ फैलाकर भागता था और तू उसे अपनी छाती में छिपा लेती थी? आज इसी रात को उसके सामने भयंकर अंधकारपूर्ण मार्ग है, परन्तु तुझे उसकी चिन्ता नहीं?

[वह फिर चुप होकर सतीश की माता की ओर देखता है।]

सरदार— (अपने कर्मचारी से) जानते हो जब सतीश गोद का बच्चा था तब इसने उसे सर्दी-गर्मी से बचने के लिए कितने प्रयत्न किये थे? जब वह पैरों चलने लगा था तब यह कितने यत्न से उसे रखती थी? परंतु आज यदि यह अपने उसी इकलौते बच्चे को इस प्रकार मृत्यु के मुँह में छोड़े दे रही है तब इसने बचपन में उसकी रक्षा ही क्यों की थी? आज इसे अपने एकमात्र पुत्र की, अपने जीवन के

आधार पुत्र सतीश की कोई चिन्ता नहीं ! उसे स्वयं ही धधकती हुई आग में झोंक रही है !!

सतीश की माता—आह ! मेरा बच्चा !! मेरा बच्चा !!

मेरे बच्चे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

[सरदार अपने कर्मचारी की ओर देखता है ।]

कर्मचारी--उसने हमारे शत्रुओं की सहायता की है और हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है ।

सरदार—यही नहीं, सबसे बड़ा उसका अपराध यह है कि वह अपना भला-बुरा भी नहीं देखता । (अपने कर्मचारी) आइए अब .. ..(सरदार उठने लगता है, और बाहर की ओर इशारा करता है ।)

माता—मेरे पुत्र को तुम उँगली से भी नहीं छू सकते, उसको नहीं मार सकते ।

कर्मचारी--और जब वह स्वयं ही मरना चाहता हो तो ?

माता— (उत्तेजित होकर) देखो, मेरे बच्चे को मत छूना । यदि उसका बाल भी बाँका हुआ तो याद रखना मेरी आह शाप बनकर तुझे भस्म कर देगी । मेरे पुत्र को छूते ही ईश्वर तुझे पुत्ररहित कर देगा । अभागे ! नीच !! याद रख कोई तेरे भी ऊपर है ; हत्यारे !

सरदार—चुप । (सिपाहियों से) ले जाओ इसे यहाँ से बाहर ।

[सिपाही सतीश की माता को ले जाते हैं । कमरे में अब सरदार और उसका कर्मचारी रह जाता है । सरला एक कोने में खड़ी है ।]

सरदार—तुम जाओ ! सतीश को तलवार के घाट उतार दो।

कर्मचारी—(काँपकर) मैं ? नहीं, क्षमा करें।

सरदार—मैं आज्ञा देता हूँ—जाओ, और उसे मार दो।

कर्मचारी—आह ! सुना था आपने उसकी माता का शाप ! उसकी आह शाप बनकर भस्म कर देगी ! देखा था आपने उसका भयंकर रूप ?

सरदार—(जैसे भयानक स्वप्न देखकर काँप उठा हो) हाँ, मनुष्य किसी सशस्त्र व्यक्ति का सामना कर सकता है, पर भयानक स्वप्न नहीं देख सकता। ऐसी ही भयानक थी उसकी मूर्ति। पर जाओ। शीघ्र अपना काम करो।

[कर्मचारी धीरे-धीरे जाता है। सरदार कुछ सोचने लगता है।]

सरला—(जैसे सोते से जागकर) हाय ! हाय !! क्या मार ही डालोगे उसे ?

सरदार—(चौंककर) क्या हुआ ?

सरला—क्या मार ही डालोगे उसे ?

सरदार—(गम्भीर होकर) अभी, देखो खिड़की से दिखाई देगा तुम्हें वह। अभी मरेगा नीच।

सरला—(जल्दी से) मैं तुम्हें बता दूँगी।

सरदार—(आश्चर्य से, अचकचाकर) क्या ?

सरला—जो तुम जानना चाहते हो, मैं तुम्हें सब बता दूँगी।

सरदार—मैं तो यह चाहता ही हूँ। बताओ, बताओ जल्दी।

सरला—पहले प्रतिज्ञा करो कि उसे तुम मारोगे नहीं।

सरदार—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ; कसम खाता हूँ।

सरला—तुम उसे मुझे सौंप दोगे?

सरदार—हाँ, तुम्हें सौंप दूँगा।

सरला—सुनो।

[सरदार पास जाता है। सरला को जितना मालूमथा वह बता देती है।]

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे?

सरदार—(उसकी बात पर ध्यान न देकर) बड़ा काम किया इसने। जाते कहाँ हैं अब नीच!

सरला—अब तो उसे छोड़ दोगे तुम?

[सरदार कोई उत्तर नहीं देता और चुपचाप मकान के बाहर चला जाता है। "खट" की जोर से आवाज होती है। फिर शान्ति हो जाती है। सरला व्याकुल होकर खिड़की से झाँकती है और चीख पड़ती है। इसी समय सतीश की मा कमरे में आती है। सरला दौड़कर उसके गले से लिपट जाती है।]

माता—सुना, बेटी! तेरा सतीश .....

[सरला रोने लगती है। सतीश की माता उसको छाती से चिपटा लेती है। उसकी आँखों में भी आँसू आ जाते हैं।]

माता—रो ले बेटी मेरी ! सतीश तेरा चला गया। परंतु मैं अपनी आँख में आँसू का एक बूँद नहीं आने दूँगी। कल तक मैं एक साधारण युवक की माता थी, परन्तु इस समय मैं एक ऐसे शहीद की माता हूँ जिसकी गिनती संसार के महान् पुरुषों में होगी। सारे विश्व में लोग उसकी कीर्ति का गान गाते फिरेंगे। मातायें अपने पुत्रों के सामने उसका आदर्श रक्खेंगी। अमर कहानियों की तरह उसका नाम अमर होगा। (कुछ गम्भीर होकर) महापुरुष जन्म लेते हैं ; अपने गौरव का उन्हें ध्यान रहता है, गौरव की तरह वे जीते हैं ; मृत्यु उनके भी साथ रहती है। मेरा सतीश तो अभी बालक ही था। उसके सामने सारा संसार खुला था, जीने के लिए सैकड़ों वर्ष थे। हत्यारे कहते थे—एक बार बोल दे ; संसार का वैभव तुझे मिल जायगा। परन्तु उसने सब ठुकरा दिया। ऐसा था वह ! उन नरक के कीड़ों की धमकियाँ अब भी गूँज रही हैं। सरला, बेटी, संसार में मृत्यु से बढ़कर भी कुछ है। बच्चे ही मृत्यु पर आँसू बहाते हैं।

[सरला वैसे ही रोती रहती है। सतीश की माता उसके सिर पर हाथ फेरती है।]

माता—बेटी, चल, उसे अन्दर ले आवें। बाहर छोड़ना ठीक नहीं।

[परदा गिरता है।]

प्रेमी

[स्थल—गंगा के किनारे एक छोटा-सा घर। सफेद पुता हुआ। बाहर से दो कमरे दिखाई देते हैं। एक कमरा नीचे है जिसमें तीन दरवाजे हैं। तीनों पर चिकें पड़ी हुई हैं। सादी, परन्तु गोटदार। एक कमरा ऊपर है। इसमें बीच में एक दरवाजा है और उसके दोनों तरफ दो छोटी-छोटी खिड़कियाँ हैं। उन पर भी वैसी ही चिकें पड़ी हैं।

नीचे के कमरे का एक दरवाजा खुला हुआ है, परन्तु चिक पड़ी रहने के कारण अन्दर की कोई चीज दिखाई नहीं देती।

कमरे में दो तख्त पड़े हैं। उन पर चटाइयाँ बिछी हुई हैं, दीवारें सफेद चूने से पुती हैं। दो-तीन चित्र भी टँगे हैं, परन्तु बहुत पुराने। मालूम होता है चित्र लगानेवाले को अब उनकी चाह नहीं है।

दरवाजों के सामनेवाली दीवार में भी एक दरवाजा है जो आँगन में खुलता है।

समय—जाड़े का सुहावना प्रातःकाल। बीच के खुले दरवाजे से छन-छन कर धूप आ रही है। नवंबर का महीना है। धूप भली लगती है, पर ज्यादा ठंड भी नहीं है। आसमान साफ है। बाहर का वातावरण कोलाहल पूर्ण है। घर में बड़ी शान्ति है जैसे कोई रहता ही न हो।

पात्र—शान्ति—सोलह-सत्रह वर्ष की कृषक-बालिका। मोटी पर साफ धोती। रुई का गहरी हरी छींट का सलूका। बाल रूखे पर बँधे हुए। मुख कुछ छोटा, परंतु भोला। रंग साँवला, परंतु भला लगनेवाला।

प्रभा—उसी अवस्था की सुंदर युवती। साफ-सुथरी वेश-भूषा। गोरा रंग, सुघड़ चेहरा-मोहरा। चपल, चंचल, हँसमुख और तेज। स्वतंत्र विचारों की युवती। दोनों बातें कर रही हैं।]

शान्ति—मालकिन अभी आती हैं। उन्होंने आपसे बैठने को कहा है।

प्रभा—(बैठती नहीं ; खड़े-खड़े शीघ्रता से) शांति, जा फिर, मालकिन से कह दे, जल्दी आवें। नहीं मैं ही आती हूँ।

शान्ति—बैठिए आप, एक मिनट में आती हैं वे। जरा कपड़े.....

प्रभा—(तेज होकर) कपड़े! मेरे कारण कपड़े बदल रही हैं वे? कह, जाकर अभी, मैं बड़ा बुरा मानूँगी।

[शान्ति चुप रहती है। केवल दरवाजे की ओर देखने लगती है जैसे जानना चाहती है मालकिन के आने में कितनी देर है।]

प्रभा—(उसी स्वर में) क्या मुझसे—मुझे दूसरा समझती हैं वे, जो लगीं सबेरे-सबेरे कपड़ा बदलने?

शान्ति—(दृढ़ स्वर में) उनकी आज्ञा है। कपड़े बदल रही हैं वे। अभी आवेंगी, बहुत शीघ्र। आप बैठिए। दो मिनट में आती हैं, अभी।

प्रभा—(जैसे हारकर बैठती हुई) इतने दिन बाद मिलने आयी हूँ। फिर भी.....

शान्ति—(कुछ सतर्क होकर) कब आयीं आप बाहर से ?

प्रभा—(अनमने भाव से) कल शाम को ।

शान्ति—[illegible] चली आयीं आप ?

प्रभा—(ध्यान न देकर) शान्ति, मालकिन तुम्हारी अच्छी तरह हैं ?

शान्ति—(कुछ अनिश्चित स्वर में) हाँ । ठीक ही हैं ।

प्रभा—और तुम ?

शान्ति—मैं भी । (कुछ सोचने लगती है । एक बार दरवाजे की ओर देखती है और फिर उसी स्वर में कहा) ठीक हूँ मैं भी ।

प्रभा—किसी बात की तकलीफ तो नहीं है तुझे ? क्योंरी ?

शान्ति—मालकिन, (कुछ सोचकर रुक जाती है आँगन की ओर कान लगाकर आहट लेती है ; फिर कुछ पास खिसक कर) मालकिन आप ही की बात सुनती हैं । आप उनसे (फिर आहट लेती हुई) उनसे मेरे लिए एक प्रार्थना कर दें ।

प्रभा—(आत्मीयता दिखाती हुई मुद्रा से) क्या चाहती है तू शान्ति ?

शान्ति—दस वर्ष हुए । (पास आकर) मालकिन कहती हैं, मैं यहाँ आयी थी । उन्होंने मुझसे वादा करा लिया था, मैं किसी से कभी प्रेम......।

[शान्ति शर्म से सर झुका लेती है । प्रभा उसकी ठोढ़ी पकड़ कर स्नेह दिखाती हुई उसका मुँह ऊपर उठाती है । शान्ति जैसे अपने को उसी पर छोड़ देती है ।]

प्रभा--तो तू अब प्रेम करती है किसी से ? (मुसकराती हुई) तो आगे कह, चुप क्यों हो गयी ! मालकिन आती होंगी।

शान्ति—(जैसे चौंककर) उस समय मुझे मालूम नहीं था, मैं क्या वचन दे रही हूँ. पर आज, आज (कुछ रुक कर) आप उनसे कह दें... ..।

प्रभा—(मीठी झिड़की देकर) साफ-साफ कहती नहीं, तब मैं समझूँ कैसे ?

शान्ति—(साहसपूर्वक एक बार फिर आहट लेकर) मेरे घर के पास रहता है सुन्दर, उसी से। मालकिन को भी मालूम है, पर पूछने का साहस नहीं होता मुझे। न जाने क्यों ? फिर भी मैं बिना उनसे पूछे कुछ कहना नहीं चाहती सुन्दर से। मालकिन को मैंने वचन दिया था, दस वर्ष पहले। तब मैं बहुत छोटी थी। तब की बात, ऐसी बात भला कह सकता है कोई ?

[प्रभा कुछ सोचने लगती है। प्रेम विषयक बात-चीत का प्रभाव उस पर भी पड़ता है। शान्ति की ओर वह बड़े स्नेह से देखने लगती है।]

शान्ति—मालकिन (उसी स्वर में) मालकिन सब जानती हैं, पर मुझे साहस नहीं होता। जब मैं पूछना चाहती हूँ, इतनी कठोर हो जाती हैं वे जैसे उन्होंने कभी किसी से प्रेम किया ही ही न हो।

प्रभा—शान्ति ?

शान्ति—और क्या। दस वर्ष हो गये मुझे उनके साथ

रहते। क्या उनकी बात, उनकी पुरानी कहानी, छिपी रह सकती थी ? सभी जानते हैं।

प्रभा—(उसी स्वर में) शान्ति ! क्या बक रही है ?

शान्ति—सभी जानते हैं। और अब तो वह यहीं आ भी गया है।

प्रभा—(आश्चर्य से) दिवाकर लौट आये ?

शान्ति—देखो, तुमने ही उनका नाम लिया है पहले। (फिर कुछ साधारण रीति से जैसे जल्दी से अपने विषय पर आना चाहती हो) हाँ, लौट आये वे।

प्रभा—कब ?

शान्ति—मैंने कल देखा। मालकिन नहा कर लौट रहीं थीं। मार्ग में वे मिले। चार आँखें हुईं। मालकिन के मुँह से निकला—दिवाकर ! बस, वे इनकी ओर देखते रहे। ये लौट आयीं, चुपचाप।

[प्रभा चुपचाप सुनती रहती है और शान्ति की ओर इस ढंग से देखती है जैसे कोई भूली बात याद करने का प्रयत्न कर रही हो।]

शान्ति—(कुछ रुककर फिर कहती है) जब उन्होंने एक बार प्रेम किया तब मैं, मुझे भी.....आप मेरी ओर से उनसे प्रार्थना कर दें।

प्रभा—(संक्षेप में) मैं प्रयत्न करूँगी।

[रजनी आती है। दोनों खड़ी हो जाती हैं। प्रभा प्रणाम करती है। रजनी आशीर्वाद देती है। दोनों बैठती हैं। शान्ति बाहर चली जाती है।

रजनी चालीस वर्ष की स्त्री। अविवाहित है। स्वस्थ है।। दृष्टि से दृढ़ता टपकती है। सफेद धोती। ऊनी चादर ओढ़े।]

प्रभा—क्षमा कीजिएगा। मैंने सबेरे-सबेरे कष्ट दिया आपको।

रजनी—कष्ट दिया! कब आयीं?

प्रभा—कल आई थी। आज चली जाऊँगी। इसी से इस समय आई।

रजनी—नरेश कहाँ है आजकल?

प्रभा—आये हैं मेरे साथ। यहाँ आना चाहते थे आपके दर्शन करने। पर मैंने आपसे आज्ञा ले लेना आवश्यक समझा।

रजनी—(कुछ गम्भीर होकर) तू तो जानती है प्रभा! इस घर में कोई युवक नहीं आ सकता।

प्रभा—परंतु (विनीत स्वर में) मुझे तो आशा थी यह नियम दूसरों के लिए है। उन्हें आप अवश्य आज्ञा दे देंगी।

रजनी—मैं नरेश को बहुत चाहती हूँ, पर घर के लिए मैंने निश्चित कर लिया है किसी युवक को आने नहीं दूँगी।

प्रभा—पर वे तो गैर नहीं हैं?

रजनी—मैं जानती हूँ, तेरा उसने विवाह होने को है, पर इस घर में.....।

प्रभा—अच्छा, शान्ति को तो आप विवाह करने की आज्ञा दे दें।

रजनी—दस वर्ष पहले ही मैंने उससे वचन ले लिया था कि वह किसी से प्रेम न करेगी। उसे अपने निश्चय पर दृढ़ रहना चाहिए। (कुछ सोच कर) शान्ति को मैं चाहती हूँ। यदि वह विवाह करना चाहती है तो कर ले, पर इस घर में उसका प्रेमी पति आ नहीं सकेगा। यहाँ नहीं, बस।

प्रभा—वह अकेली रह सकेगी ? उसका मन लगेगा ?

रजनी—काम में सब का मन लग जाता है।

प्रभा—क्षमा कीजिएगा, मैं पूछूँ, जाड़े के ठिठुरते दिनों में, सूनी रात में आपका मन लगता है इस घर में ?

रजनी—पगली ! (हँसती है)

प्रभा—(कुछ चकित-सी होकर) कभी जी नहीं घबड़ाया आपका ?

रजनी—बीस-बाईस वर्ष हो गए, जब मैं तेरी ही उम्र की थी। मैं भी सोचा करती थी—प्रेम, प्रेमी, विवाह, सुख। मैंने प्रेम भी किया था। और..... परंतु जाने दे उन बातों को। पुरानी बातों का भूल जाना ही अच्छा।

प्रभा—परंतु भविष्य .....।

रजनी—(जैसे उसे पागल समझती हो) भविष्य ! इतने समय तक मैं एकान्त में रही हूँ कि अब मुझे किसी पुरुष को देखते ही भय लगता है।

प्रभा—नहीं, अभी यह बात !

रजनी—जाने दे इन बातों को। मैं आशीर्वाद देती हूँ तुझे—तेरा भविष्य सुखमय हो। जीवन का सुख तुझे मिले।

प्रभा—परंतु आप अपने एकान्त जीवन से सुखी हैं ?

रजनी—मैं ? सुख युवावस्था के लिए है। वही स्वर्ण-समय है। मेरे लिए यह वृद्धावस्था और अन्धकार-पूर्ण भविष्य। एक समय था जब मुझे एकांत में भय लगता था। अकेले रहने पर मैं रोया करती थी। बड़े-बड़े दिन और लम्बी लम्बी रातें, काटे नहीं कटती थीं।

प्रभा—और आज ?

रजनी—अब स्वप्न मेरे प्यारे बच्चे हैं। अंतर केवल इतना है कि इन्हें दूसरे प्यार नहीं कर सकते, दूसरे खिला नहीं सकते। ये मुझसे इतने हिले हुए हैं कि मुझे छोड़ कर कहीं जाते भी नहीं। जाड़े की ठंडी रातों में जब आग बैठ कर तापती हूँ तब ये भी खेलते-कूदते मेरे पास आ जाते हैं। जब मैं अकेली सोने जाती हूँ तब भी ये मेरी छाती से चिपट कर अपने गर्म-गर्म होंठों से मुझे वैसा ही चूमते जान पड़ते हैं जैसे बच्चे अपनी माताओं को। मेरे सामने तरह-तरह की क्रीड़ाएँ करके ये मुझे मोहित करते रहते हैं। इसी से मुझे अब एकान्त प्रिय है जहाँ मै अपने इन सुकुमार बच्चों के साथ सुख से रह सकूँ।

प्रभा—तब तो यही जीवन अधिक सुखमय है। मैं भी·····।

रजनी—चुप, ऐसा कभी सोचना भी मत। कदापि नहीं। इस बात को बिलकुल भूल ही जा। आज मैं वे बातें कह गई हूँ, जिनके कहने की मुझे कभी इच्छा ही नहीं थी। अब इसे भूल जा। प्रभा, मुझसे अपने विवाह की बातें कर। सब

तैयारियाँ हो गयीं ? क्या-क्या गहने-कपड़े बने हैं ? तुझे कौन-कौन चीजें पसन्द हैं ?

[शान्ति का प्रवेश । शीघ्रता से कुछ घबड़ाई हुई आकर वह रजनी की ओर देखती है ।]

रजनी—क्या है ?

शान्ति—एक महाशय आये हैं और आपको पूछ रहे हैं।

रजनी—(आश्चर्य से) मुझे ?

शान्ति—हाँ, वे ही हैं जो कल मिले थे गंगाजी पर। मैंने उनसे बहुत कहा—मालकिन नहीं हैं, उनसे मुलाकात नहीं हो सकती। पर वे तो कुछ सुनते ही नहीं। जिद कर रहे हैं, जाकर कह दे मालकिन से।

रजनी—(कुछ देर सोचती रहती है फिर जैसे साहस बटोर कर कहती) अच्छा, मिल लूँगी उनसे। यहीं बुला ले उन्हें !

शान्ति—(चकित होकर) यहाँ ? घर में ?

रजनी—हाँ।

[शान्ति आश्चर्य से एक बार प्रभा की ओर देखकर बाहर जाती है।]

रजनी—प्रभा। यहीं रहियो तू, मेरे पास। मेरे लिए यह बड़ी कठोर परीक्षा का समय है। दिवाकर आये हैं, मुझसे मिलने।

प्रभा—जैसा कहिए।

रजनी—(अपने वस्त्रों की ओर देखती हुई) अच्छा हुआ प्रभा, जो तेरे आने के बहाने मैं कपड़े बदल आई।

प्रभा—तभी तुम अच्छी लग रही हो।

रजनी—प्रभा ! दिवाकर आये हैं। मैं उनका किस तरह स्वागत करूँ ? पुरुषों से किस ढंग से बातचीत की जाती है, मैं तो यह भी नहीं जानती। उनसे जल-पान को कहूँ ? पर वे क्या-क्या चीजें पसन्द करते हैं, प्रभा ?

[शान्ति का प्रवेश। आते-आते पहले वह प्रभा की ओर ही देखती है। उसके साथ में दिवाकर है। रजनी की ओर एक बार देखकर वह प्रभा की ओर देखने लगता है। शान्ति उसके पीछे होकर दरवाजे से बाहर निकल जाती है।

दिवाकर—पैंतालीस वर्ष का व्यक्ति। हृष्ट-पुष्ट होने के कारण उसकी अवस्था कम मालूम होती है। चुस्त पोशाक पहने है जिससे पता लगता है कि उसने वस्त्रों से अपने को सजाने में बड़ी बुद्धि खर्च की है। चूड़ीदार पैजामा और रेशमी अचकन। चेहरा-मोहरा साफ। सर पर रेशमी गांधी-टोपी। बाल चिकने। पैर में रेशमी मोजा और काला चमचमाता हुआ वार्निश का जूता। हाथ में छड़ी। कलाई पर घड़ी। जेब में रूमाल और फाउनटेन पेन। दृष्टि गंभीर। कमरे में चारों ओर देखते हुए कभी प्रभा की ओर देखने लगता है कभी दबी निगाह से रजनी की ओर।

रजनी और प्रभा दिवाकर के आते ही उठ खड़ी होती हैं]

रजनी— (प्रणाम करती हुई) बैठिए।

[दिवाकर बिना कुछ उत्तर दिये तख्त पर बैठ जाता है। जमीन पर बिछी चटाई पर रजनी और प्रभा खड़ी रहती हैं।]

रजनी—आप के लिए कुछ जल पान ?

दिवाकर— (अनिच्छा से) नहीं, धन्यवाद, मैं अभी कर आया हूँ ।

[रजनी को आगे प्रसंग नहीं सूझता । वह प्रभा की ओर ताकने लगती है ।]

दिवाकर—भूली तो नहीं तुम मुझे ? पच्चीस वर्ष पहले मैं गया था यहाँ से । फौज में नौकरी की । कर्नल के पद पर पहुँच गया । अब आया हूँ सब छोड़-छाड़ कर ।

रजनी—सैनिक बने तुम ?

दिवाकर—हाँ, सेना में मैंने काम किया । परंतु जाने दो इन बातों को । मै तो तुम्हारे विषय में (प्रभा की ओर देख-कर) तुमने अपने दिन कैसे बिताये यहाँ ?

रजनी— (अस्वाभाविक स्वर में) मैंने !

दिवाकर—हाँ, यही मैं जानना चाहता हूँ । (प्रभा की ओर संकेत करके) ये तो सब बातें जानती ही होंगी तुम्हारे विषय में । अब उन्हें दोहरायेंगी तो व्यर्थ ही ऊबेंगी ये ।

[प्रभा की ओर फिर देखता है । प्रभा चलने को तैयार हो ती है रजनी उसकी ओर देखकर सर झुका लेती है)

प्रभा—(चलती हुई) हाँ, मै तो भूल ही गयी । मुझे तो दोनों पूर्व परिचितों की एकांत में बातें करने देना चाहिए था । क्षमा करें ।

रजनी— (प्रभा के मुड़ते ही) नहीं प्रभा, मुझे तुमसे अभी कुछ बातें करना है, सुन तो !

दिवाकर—जाती थोड़ी हैं अभी वे ।

[प्रभा भीतर चली जाती है। रजनी जैसे कुछ भयभीत सी खड़ी रहती है। दिवाकर आराम से बैठ जाता है और रजनी को भी बैठने का संकेत करता है। रजनी जमीन पर बैठ जाती है।]

दिवाकर—(दृढ स्वर में) रजनी !

रजनी—(डरी हुई आवाज से) दिवाकर !

दिवा—याद है तुम्हें उस दिन की जब कई वर्ष तक परस्पर प्रेमसूत्र में बँधे रहने पर भी तुमने विवाह के संबंध में अपनी अस्वीकृति दी थी।

रजनी—पच्चीस वर्ष, तीन महीने और दस दिन हुए।

दिवाकर—(प्रसन्न होकर) तब तुम भूली नहीं हो मुझे। और न मैं ही तुम्हें भूला हूँ। उस दिन से अब तक की समस्त घटनाएँ मुझे ज्यों की त्यों याद हैं। कैसे मैं निराश होकर अपना मुँह छिपाता हुआ यहाँ से भागा और जीवन की सारी सुकुमार मधुर और भावुक कल्पनाएँ भूल जाने के लिए मैंने सैनिक बनना स्वीकार किया ; फिर किस तरह उसी दिन से आज तक यहाँ आने के लिए बेचैन रहा हूँ। नित्य ही आने का विचार करता था। और इसी से कभी तुम्हें पत्र नहीं लिखा। पर आ न सका। इस बार अपने घाव के अच्छे होते ही मैं सब छोड़-छाड़ कर भाग आया।

रजनी—घायल हुए थे तुम ?

दिवाकर—हाँ, थोड़ा सा। तभी मैंने सोचा, तुम्हें एक बार देख लूँ। अब बताओ, तुम क्या करती रहीं इतने दिन तक।

रजनी—(अगम्य भाव से) मैं ! मैं घर में रही।

दिवाकर—घर ! समझती हो घर का अर्थ मेरे लिए क्या था ? मेरे साथी अपने घर के, अपनी माँ बहन बीवी बच्चों के, विषय में बातें किया करते थे। पर मैं यहीं की याद किया करता था।

रजनी—यहीं की ?

दिवाकर—हाँ रजनी ! "यहाँ" से मेरा आशय तुम से था। जानती हो मैं यहाँ क्यों आया हूँ ?

[रजनी उत्तर न देकर उसकी ओर उत्सुकता से ताकने लगती है।]

दिवाकर—मैं केवल एक प्रश्न पूछने आया हूँ। तुमने मेरे पहली बार पूछने पर "नाही" कर दी। यदि मैं तुमसे दो बारा तुम्हारी सम्मति चाहता तो तुम क्या कहतीं ?

रजनी—मैं कैसे बताऊँ कि उस समय मैं क्या कहती।

दिवाकर—फिर भी, मुझे विश्वास है कि तुम झूठी न होगी।

रजनी—इतने वर्ष बीत गए अब मैं क्या बताऊँ ?

दिवाकर—तो क्या मैं बीती बातों को भूल जाऊँ ?

रजनी—जैसी इच्छा हो तुम्हारी।

दिवाकर—मेरी इच्छा ? नहीं, जैसी आज्ञा हो ! मैं तो कहूँगा, उस समय जो कुछ हुआ सो हुआ, भावी जीवन हमारे हाथ में है।

रजनी—क्या तुम अब यहीं रहना चाहते हो ?

दिवाकर—हाँ, यदि तुम चाहो।

रजनी—तब तो अच्छी बात है। हम तुम कभी-कभी मित्रों के घरों में मिल सकेंगे।

दिवाकर—मित्रों के घरों में ? इस घर में नही ?

रजनी—(कुछ तेज स्वर में) दिवाकर ! भूली बातों की याद मत दिलाओ। जानते हो पच्चीस वर्ष हुए जब तुम्हीं इस घर में आये थे और पच्चीस वर्ष बाद आज फिर तुम्हीं यहाँ आये हो—बीच में इस घर ने, इस घर की दीवारों ने किसी दूसरे पुरुष का मुँह नहीं देखा।

दिवाकर—तब तो मैं समझता हूँ तुम्हें पुरुषों के साथ अवश्य रहना चाहिए और इसी घर में।

रजनी—यह घर अब एक बुढ़िया का है।

दिवाकर—भट्टी में जाय बुढ़िया। (फिर कुछ सोचकर) क्षमा करना यह एक सैनिक का उत्तेजित स्वभाव था जो तुम्हारी बात सहन न कर सका। परन्तु मेरी दृष्टि में तुम वही सोलह वर्ष की सुन्दर युवती हो। तुम्हारी बड़ी-बड़ी आँखें, पतले ओंठ, और भोला मुख अब भी मुझे उसी तरह मुग्ध कर रहा है। तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारा वह सुंदर वेश अब तक मेरी आँखों के सामने नाचता रहा और उसी को देख कर मैं अनेक बार सुखद कल्पनाओं में मग्न हो चुका हूँ। और मुझे आज भी वैसी ही सुन्दर तुम लग रही हो।

रजनी—दिवाकर, तुम मेरी हँसी उड़ा रहे हो ?

दिवाकर—रजनी, मैं बिलकुल सच कह रहा हूँ।

रजनी—दिवाकर, तब मुझे स्पष्ट कहने दो। मुझे ऐसी

बातें अब पसंद नहीं। मैं केवल तुम्हारे यहाँ आने का कारण जानना चाहती हूँ।

दिवाकर—तो सुन लो रजनी! मैं तुम से पच्चीस वर्ष बाद आज फिर यह पूछने आया हूँ कि क्या तुम मुझ से विवाह कर सकती हो। पच्चीस वर्ष पहले भी मैंने इस संबंध में तुम से पूछा था, और आज फिर पूछ रहा हूँ। उस समय तुमने मुझसे विवाह करना अस्वीकार कर दिया था। पर आज, मुझे आशा है, तुमने अपना मत अवश्य बदल दिया होगा। इसका तुम्हें अधिकार भी है।

रजनी—हाँ दिवाकर, अब मैं अपना मत बदल चुकी हूँ।

दिवाकर— (उसका आशय न समझ कर और प्रसन्न होकर) रजनी!

रजनी—तुम समझे नहीं।

दिवाकर—यही तो कि तुमने अपना मत बदल दिया है और अब तुम मुझसे.....!

रजनी—सच यह है कि दिवाकर, पच्चीस वर्ष पहले विवाह का प्रश्न किये जाने पर मैंने जो "नाहीं" कर दी थी, उसका कारण केवल "शर्म" थी; मेरा मन, मेरा हृदय दिवाकर! सम्मिलित स्वर में 'हाँ' कर रहा था। परन्तु आज पच्चीस वर्ष पश्चात, इस बुढ़ापे में आज मैं अपने हृदय और मस्तिष्क के समस्त संयुक्त स्वरों से एक मत होकर 'नाहीं' कर रही हूँ। मुझे अब क्षमा करें।

दिवाकर—परन्तु आज (एक साँस लेकर) रजनी

आज मैं तुम्हारी "नाहीं" नहीं स्वीकार कर सकता। उस समय तक बार-बार पूछूँगा जब तक तुम.....!

रजना—जब तक क्या दिवाकर ? तुम्हारा बार-बार पूछना क्या मुझे युवती बना देगा ? क्या तुम्हारी युवावस्था लौट आवेगी ?

दिवाकर—मेरी ? रजनी सच्चे प्रेम पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

रजनी—तब क्या तुम्हारा प्रेम वही है ?

दिवाकर—हाँ रजनी, बिलकुल वैसा ही सच्चा और पुनीत जैसा पच्चीस वर्ष पहले उस दिन था जिस दिन मैंने तुम से प्रणय-भिक्षा माँगी थी रजनी !

रजनी—परंतु इसका कारण है कि तुम यहाँ से चले गये। तुम्हारा मन युद्ध की बातों में लग गया। तुम....।

दिवाकर—मन लगा नहीं।

रजनी—बहला तो ! जब तुम युद्ध में लग जाते होगे तब तो तुम्हें मेरा ध्यान न आता होगा ? परन्तु मुझे तो ऐसे युद्धों में भाग लेने का कोई अवसर मिला नहीं कि तुम्हारा ध्यान कुछ देर के लिए मस्तिष्क से निकल जाता। धीरे-धीरे व्यथा सहते-सहते हृदय की सारी उमंग, प्रेम का सारा उत्साह ठंडा हो गया। समय ने उसको समाप्त कर दिया। अब जाने दो।

दिवाकर—रजनी, अभी देर नहीं हुई है। अब भी समय है। प्रेम मरता या समाप्त नहीं होता; केवल सो जाता है। तुम्हारे हृदय की सोती हुई प्रेम-भावनाओं को जगाने का मुझे अवसर दो।

रजनी—दिवाकर, क्षमा करो। मैं अब यह नहीं चाहती। मुझे अपने इसी जीवन में संतोष है।

दिवाकर—परंतु मुझे ?

रजनी—तुमने तो एक वीर मनुष्य का जीवन बिताया है, अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दिवाकर—रजनी, मुझे बड़ी आशा थी।

रजनी—अब स्मृति और कल्पनाओं में मग्न रहो।

दिवाकर—तब निराश हो जाऊँ ? क्या यही तुम्हारा निश्चय है ?

रजनी—हाँ, दिवाकर, विवश हूँ। क्षमा करो।

[दिवाकर निराश होकर खड़ा हो जाता है। एक बार रजनी का हाथ अपने हाथ में ले लेता है; उसे दबाता है।]

दिवाकर—तब जाता हूँ।

[दिवाकर प्रणाम करता है, रजनी उत्तर देती है। दिवाकर उसकी ओर देखता हुआ जाता है। रजनी एक साँस लेकर उसी स्थल पर आकर बैठ जाती है जहाँ दिवाकर बैठा था। सर झुका लेती है। प्रभा का प्रवेश।]

प्रभा—(सर उठाकर उसकी ओर देखती हुई) प्रभा ! मैंने तेरे नरेश को यहाँ आने से मना कर दिया, इससे तुझे कुछ दुःख तो नहीं हुआ ?

प्रभा—हम दोनों की इच्छा बड़ी थी यहाँ आने की।

रजनी—मेरी तरफ से उससे कह देना, वह यहाँ खुशी से आवे। मैं उसके आने से प्रसन्न हूँगी।

प्रभा— (चकित होकर हर्षित स्वर में) बड़ी कृपा की। वे यहाँ आकर बड़े खुश होंगे।

[प्रभा प्रणाम करके जाती है। रजनी फिर कुछ सोचने लगती है। शान्ति का प्रवेश।]

शान्ति—मैं आ सकती हूँ।

रजनी—कहो, क्या है।

शांति—जो महाशय यहाँ आये थे उन्होंने मुझे यह नोट दिया है। क्या करूँ इसका?

रजनी—क्यों? रख ले अपने पास।

शांति—उन्होंने कहा था—तू इसकी साड़ी खरीद लेना या अपने प्रेमी के लिए कोई उपहार। मैं साड़ी तो नहीं चाहती परंतु प्रेमोपहार..... ।"

रजनी—याद है तुझे। मैंने कहा था तू किसी से प्रेम नहीं कर सकेगी?

शान्ति—मुझे अच्छी तरह याद है।

रजनी— (कुछ सोचती हुई) शान्ति, तू अभी छोटी है।

शान्ति—नहीं, मैं तो सोलह-सत्रह की हूँ अब।

रजनी—अच्छा शांति, यदि तू चाहती है तो किसी योग्य युवक से प्रेम कर ले, मुझे कोई आपत्ति न होगी।

शान्ति— (अत्यंत हर्ष से) मालकिन!

रजनी—(जैसे अपने आप कह रही हो) ईश्वर न करे कि मैं किसी का दिल दुखाऊँ कभी।

कनवेसिंग

[प्रातःकाल सात का समय। जाड़े का आरंभ। मकान के सामने सड़क पर कपूर टहल रहा है। यह अपने वार्ड से म्युनिसिपल चुनाव के लिए खड़ा है। स्थानीय स्कूल का मैनेजर है। पुत्र व्यापारी है; भाई लेन-देन करता है। बड़ा लड़का वकील है। इस तरह इसका काफी नाम है। इस समय खद्दरधारी हैं; कुरता, धोती, चप्पल, ऐनक और बटनों के बीच में फाउंटेन पेन। सिगरट पी रहा है। एक हाथ में कई कागजों की पिन लगी फाइल है, दूसरे में एक पीली पेंसिल। कभी कागज पलटता है और कभी सड़क के एक ओर कभी दूसरी ओर देखता है जैसे किसी का इंतजार कर रहा हो।

मंच पर दाहिनी और बाईं ओर एक-एक द्वार है और सामने की ओर दो जिन्हें पहला और दूसरा कह सकते हैं। इनसे छोटी गलियों का काम निकल जायगा पर जब इन पर परदा रहेगा तब ये घरों के द्वार का काम देंगे।]

कपूर—(इधर-उधर से किसी को आता न पाकर) सब-के-सब जैसे मर गए हैं कहीं! दोस्त कहलाने लायक हैं ये लोग? (घड़ी देखता हुआ) साढ़े सात होने को है; पर किसी की सूरत नहीं दीखती और वह मास्टर भी नहीं

आया अभी तक ! सात बजे के पहले ही कह गया था आने को। समझूँगा इस बार बच्चा को।

[कपूर इधर-उधर देखता है। सकसेना का प्रवेश। कपूर का यह मित्र है। आफिस में हेडक्लर्क है। पूरी आस्तीन की कमीज, पैजामा और चप्पल। हाथ में एक झोला है जैसे तरकारी लेने निकला हो।]

सक०—(मुस्करा कर) नमस्ते कपूर बाबू। कल तो आप रेशमी सूट में थे, आज खद्दरपोश कैसे ?

कपू०—(संकोच से, गर्व को दबाकर) कल अफ़सरों से मिलना था; आज यहीं चक्कर लगाना है। कल तुम दो मिनट को ही आकर चले गए थे; आज पूरी ड्यूटी करनी होगी।

सक०—आज तो छुट्टी है यार। सारा दिन अपना है। बस घंटा भर के लिए डाक्टर के यहाँ जाना होगा। पर वह अभी नहीं, नौ बजे के बाद। हाँ, ज़रा सिगरट तो देना। आया नहीं कोई अभी ?

[कपूर जेब से सिगरट-केस निकालता है। पांडेय का प्रवेश। स्कूल का हेडमास्टर है। बंद गले का कोट, चूड़ीदार पैजामा और गांधी टोपी। हाथ में छड़ी लिए है। कपूर सिगरट-केस सकसेना को देता है। मुँह में सिगरट दबाकर सकसेना पांडेय की ओर केस बढ़ाता है। पांडेय कपूर को प्रणाम कर सकसेना से हाथ जोड़कर अस्वीकार करता है। केस कपूर को लौटा दिया जाता है।]

पांडेय—(जेब से घड़ी निकालकर देखता हुआ) कुछ देर ज़रूर हुई बाबूजी, मुझे; पर आप ही का काम कर रहा था। मैंने इस वार्ड के मास्टरों को नियत कर दिया है कि वोट

लाएँ और लड़कों को प्रभात फेरी के लिए तैयार करा दिया है।

सक०—लड़कों के पिताओं के वोट तो आपकी तरफ होंगे ही ?

पां०—(उत्साहित होकर) और नहीं तो क्या ? वे हमारे ख़िलाफ़ कैसे जा सकते हैं।

सक०—(मुस्करा कर) हाँ, और क्या सबकी चोटी तो अपने हाथ में है।

कपू०—(गंभीर दृष्टि से हेडमास्टर की ओर देखता हुआ) बड़ी देर हो रही है। अभी तो कई आदमी नहीं आए हैं आज। (सामने देखकर) ओह होऽऽ, आज तो वकील साहब आ रहे हैं ! (वकील साहब सामने आते हैं) ईद का चाँद हो रहे हैं जनाब ?

[वकील खद्दर का कुरता, धोती, गांधी टोपी और चप्पल पहने, छड़ी लिए ऐनक लगाए। हाथ जोड़कर 'नमस्ते' करते हैं।]

वकील०—(मुस्कराते हुए) कैसी बातें करते हो यार। तुम्हारे लिए ही काम कर रहा हूँ और तुम्हीं को पता नहीं ? आपके यहाँ आ नहीं पाता तो यह न समझें कि चुप हूँ। कितनों ही से मिला हूँ। सभी.....।

कपू०—(लिस्ट को सामने करके सफा पलटते हुए) किस-किससे मिले आप ? किसे-किसे तय किया। (पेंसिल कागज पर लगाता है।)

वकी०—(टालटूल करता हुआ) कई हैं, नाम कहाँ तक गिनाऊँ आपको ?

वकी०—नाम मै पढ़ता जाता हूँ। जो बिलकुल तैयार हैं, उनके नाम बताइए। टिक कर लूँ।

वकी०—(सर खुजाते हुए) नहीं, देखिए उस दिन उनके यहाँ जाने का सोंचा था; फिर कुछ.....। मतलब यह कि अभी तय तो कोई नहीं है, पर मैंने जिक्र सबसे कर दिया है। आप मेरी तरफ से बेफिक्र रहें।

कपू०—भाई, इस ढील से काम बनेगा नहीं। (मास्टर की ओर देखकर) अच्छा, इस समय तो चलिए थोड़ा घूम लिया जाय।

पां०—हाँ, हाँ, चलिए। इसीलिए ही आए हैं। आइए, वकील साहब।

[बाईं ओर से सब जाते हैं। दाहने द्वार से दो मित्रों का प्रवेश साधारण वेश में |

पहला—रहेगी तो चकल्लस अगर मिस्टर टंडन खड़े हो जायँ। हिंदू-सभा के मंत्री थे; आर्य-समाजियों से भी मन मिलता है। नागरिक-संघ के भी कुछ हैं। और.....।

दूसरा—यही तो मैंने सोंचा है। अगर खड़े हो जायँ तो हजार-पाँच सौ कहीं गए नही हैं।

पह०—तो चलो, कहें उनसे।

दू०—चलो। टंडन के खड़े होने से कपूर फौरन रुपया देकर समझौता कर लेगा।

पह०—(हँसता हुआ) यही तो चाहिए यार। सौ-पचास अपने भी हाथ लग जायँगे इसी बहाने।

[बाईं ओर से दोनों जाते हैं। सामने के दूसरे दरवाजे से

प्रोफेसर साहब ब्रश से मंजन करते निकलते हैं; तहमद बाँधे, चदरा ओढ़े। सोने की कमानी का चश्मा।]

प्रोफेसर--(सामने देखकर धीरे से) ऐसी-तैसी इन एलेक्शनवालों की। करना-धरना कुछ नहीं कंबख्तों को; मुफ्त में परेशान करते हैं। आ रहे हैं चंडाल चौकड़ी बने। (दाहिनी ओर देखते हुए मुस्कराकर हाथ जोड़ते हैं।) आइए, सबेरे सबेरे ही कष्ट किया आपने। कहिए सब ओ० के०।

[कपूर और उनके साथियों का प्रवेश। कपूर के हाथ में अखबार भी है जैसे अभी ही खरीद लिया हो। एक पन्ना वकील साहब ने ले लिया है।]

कपूर—ओ० के० ही समझिए। आज कल तो परेशानी ही है।

प्रोफे०—क्यों, क्यों? खैरियत तो?

वकील—अरे, यही एलेक्शन का झगड़ा है। (कपूर इशारा करता है) आपका वोट तो हमें मिलेगा ही?

प्रोफे०—(गंभीर होकर) वेल, मैंने तो सब मिश्र जी पर छोड़ दिया है। उनकी पार्टी वाले कल आए थे। मैंने कहा—मैं दोनों से संबंध बनाए रखना चाहता हूँ। अब उपाय आप बताइए कि क्या करूँ?

[कपूर वकील साहब की ओर देखता है, पर वे सकसेना की ओर ताकने लगते हैं। कपूर मास्टर साहब की ओर देखता है।]

प्रोफे०—भाई, व्यवहार की बात है; नहीं तो मैं आपसे बाहर थोड़े ही था। पर यह तो बताइए कि मिश्र जी

आपके इतने पुराने साथी हैं। फिर आपके विपक्ष में खड़े क्यों हुए ?

पां०—साहब, हम उनसे लड़ना थोड़ी चाहते थे ; पर हमारे खिलाफ उनका पैम्फलेट निकालना ठीक था ?

प्रोफे०—(हमदर्दी से) यह उनकी सरासर गल्ती थी।

पां—बस, यही बात है। पर खैर, आप तो समझदार हैं। आप किससे आशा करते हैं काम की ? किसे योग्य समझते हैं ?

[कपूर संतोष से पांडेय की ओर देखता है। पांडेय के मुख पर प्रसन्नता झलकने लगती है।]

कपू०—प्रोफेसर साहब, कुछ तो ख्याल होना चाहिए हमारा ! पंद्रह साल.....।

प्रोफे०—माना, आप योग्य हैं ; पंद्रह साल से मेंबर हैं। पर मेरे सामने प्रश्न योग्यता का नहीं, संबंध का है। सिद्धांत और उनकी रक्षा की बातें ऊँची हैं। सामूहिक और सार्वजनिक कार्यों में सिद्धांत पर अड़े रहना सरल नहीं। मुझमें इतनी दृढ़ता कहाँ ?

कपूर—अच्छी बात है, सोच लीजिए। पर आपसे मुझे.....।

प्रोफे०—(मुस्कराकर) अभी वादा मैंने उनसे भी नहीं किया है।

कपू०—(लिस्ट देखता हुआ, दूसरे द्वार की ओर संकेत करके) सिन्हाजी रहते हैं इसमें ?

प्रोफे०—हाँ, पर अभी वे गए हैं कहीं। मैं उनसे कह दूँगा।

कपूर—धन्यवाद। और आप भी भूलिएगा नहीं।

[साथियों के साथ बाएँ द्वार से जाना। प्रोफ़ेसर साहब घर में जाते हैं। मंच पर दो-तीन आदमी इधर से उधर, जैसे सड़क पर हों, घूमते हैं। नेपथ्य से 'चाय गरम', 'गरम जलेबिएँ', 'हिंदू बिस्कुट' की आवाजें आती हैं। चमारों के चौधरी का बाएँ द्वार से आना और कपूर का साथियों के साथ दाहने द्वार से।]

कपूर—कहो, भाई चौधरी, तुम्हारे यहाँ क्या हाल-चाल है ?

चौधरी—मालिक, सब आपके गुलाम हैं। मुला, कल मिसिर जी आए रहे ; कुछ लेन-देन की बात-चीत है। सब चमारों में आप भी जरा ताड़ी-सराब का एक दो दिन इंत-जाम करा दें। बस मालिक सब आपके गुलाम हैं। मिसिर जी ने कल ताडी पिलवाकर सबको खुश कर लिया।

कपूर—हाँ हाँ, जो ठीक समझो करो। दोपहर को आ जाना आज, अच्छा।

चौ०—बहुत अच्छा सरकार।

कपूर—(पहले द्वार के पास जाकर) लाला जी ! (चौधरी से) जरा देखो, लाला जी हैं।

[चौधरी आवाज देता है। एक कहार बाहर निकलता है।]

नौकर—लाला जी हैं नहीं, कहीं गए हैं।

पां०—कितनी देर में आयगे ?

नौ०—कह नहीं गए हैं कुछ।

सक०—(वकील साहब की ओर इशारा करके) उन्होंने

तो कहा था, हम सबेरे मिलेंगे ; घर पर रहेंगे। तब चले कैसे गए ?

नौ०—(सकपका कर पीछे देखता है) मुझे मालूम नहीं, कहाँ गए ?

कपूर— (मुस्कराकर) अच्छा हम फिर आ जायेंगे।

[बाएँ द्वार से साथियों के सहित कपूर का जाना।

चौ०—देखते हो, कैसी मुलामियत से बाते कर रहे हैं आज।

कहार—बोट मागत हैं न ! आज गरज अटकी है इनकी। मालिक हमरे इन झगड़न से दूर रहत हैं। घर माँ हैं, पर कहलाय दिहिन, हैं नाहीं।

चौ०—हम सबको इन्होंने गधा समझ रखा है। अबकी हम भी समझ लेगे इनको। ताड़ी-सराब खूब पी लेगे। बाद को दिखाएँगे सीगा।

[हँसता हुआ कहार अंदर जाता है। चौधरी दाहने द्वार से जाता है। पहला-दूसरा दोनों द्वार खुल जाते हैं। दूर पर घूमते चारो साथी नजर आते हैं। मंच पर दो-एक आदमी इधर-उधर घूम लेते हैं। दाहने द्वार से कपूर आदि का प्रवेश। पहले और दूसरे द्वार पर परदा पड़ जाता है।]

कपूर—(मास्टर से) वैद्य जी का मकान है यह।

पां०—(ऊँची आवाज से पुकारता है) वैद्यजी ! पंडितजी !

वैद्य—(बाहर आकर प्रणाम करके) आज तो बड़ी कृपा की आप सज्जनों ने। कहिए, क्या आज्ञा है ?

वकील—वोट माँगने आ।एँ हैं आपके द्वार पर। आपके यहाँ तो कई वोट हैं ?

वैद्य—मैंने तो तय किया है, आधे आपके आधे उनके।

कपूर—इसका मतलब यह हुआ कि आपके वोट व्यर्थ गए ?

वैद्य—दोनों को निभाना है। हाँ, और आपकी जो सेवा हो, कर सकता हूँ।

कपूर—(लिस्ट देखता हुआ) मिस्टर हंस से कह दें आप।

वैद्य—उनसे कहना व्यर्थ है, वे मेरी नहीं मानेंगे।

कपूर—(पेंसिल दाँत से चबाता हुआ) अच्छा, प्रोफेसर शर्मा से ?

वैद्य—वे भी आज कल फ्रंट हैं। खैर, थाह लूँगा।

कपूर—हाँ, जो आप मेरे लिए ठीक समझें, करें अवश्य।

[वैद्य नमस्कार करके जाता है। कपूर सिगरट केस निकालता है। पांडेय को छोड़ कर तीनों सिगरट पीते हैं।]

सक०—भाई, मुझे आज्ञा दो अब। डाक्टर के यहाँ जाना है !

कपूर—अच्छा, जाओ। पर दोपहर को आना जरूर।

[सकसेना नमस्ते करके थैला घुमाता हुआ जाता है।]

वकील—है यह तुम्हारा साथी, पर जरा भी परवाह नहीं है इसे तुम्हारी।

कपूर—(ठंडी साँस लेकर) सबको समझ रहा हूँ। चलो, इसी बहाने अपने-पराए की परख हो जायगी।

पां०—वह अपने ही क्यों जो समय पर जान न लड़ा दें।

वकील—हाँ और क्या। सुना आपने बड़ा काम किया है?

[पांडेय कनखियों से कपूर की ओर देखता हुआ वकील साहब के हाथ जोड़ता है। कपूर कुछ सोंचता हुआ दूसरी ओर देखने लगता है।]

कपूर—अच्छा चलो, दस-बारह घर इस तरफ और हैं।

[बाएँ द्वार से जाना। पहले दूसरे दरवाजे के परदे हटते हैं। दूर पर ये लोग जाते दिखाई देते हैं। एक बूढ़े का प्रवेश।]

बूढ़ा—(दूसरे द्वार से देखता हुआ) गली गली वोटों की भीख माँगते फिरते हैं! पूछो, भले आदमी, ऐसे काम क्यों करते हो कि भीख माँगनी पड़े। सेवा का शौक है तो करो सच्चे जी से सेवा। देखो, लोग पूजते हैं या नहीं! (सामने देखकर) आइए मैनेजर साहब, नमस्ते मास्टरजी।

[कपूर साथियों के साथ आता है। साथ में एक युवक और है। रेशमी कुरता, ऊनी जवाहर वेस्ट, महीन बढ़िया धोती और चमकती हुई ऐनक। बाल लंबे, घुँघराले। मुद्रा गंभीर कुछ अध्ययन करती हुई।]

कपूर—आपकी सेवा में आए हैं।

बूढ़ा—भाई मेरा वोट तो तुम्हीं को मिलेगा। पर आपस में ही लड़ बैठे आप, ऐसा नहीं करना चाहिए था।

वकील—लड़े हम! मिश्र जी की ही तो सब ज्यादती है। बताइए, नए आदमी हैं। हमसे कहते कि आप कई बार चुने जा चुके हैं; इस बार हमें जाने दीजिए। कपूर साहब न मानते तो इनकी गल्ती थी।

कपूर—और क्या। मै तो तैयार ही था इसके लिए। मैं खुद चाहता हूँ कि नए आदमी मैदान में आएँ। पर उन्होंने ।

पां०—नए आदमी ऐसी जगह क्या करेंगे ? यहाँ अनुभवी आदमी चाहिए। पंद्रह साल का अनुभव है आपका। उन्हें तो सब कुछ सीखना पड़ेगा।

कपूर—(संतोष से) खैर, पर उन्होंने तो एक दम हम पर हमला बोल दिया। रातोंरात पोस्टर चिपका दिए। परचे निकाले। गालियाँ दी। बताइए आपही, यह सब ठीक किया उन्होंने ? यही करना चाहिए था उन्हें ?

बूढ़ा—(सहानुभूति से) हाँ, यह मिश्रजी की नादानी है, गल्ती है। अच्छा, अब तो फैसला करना ही होगा।

वकील—अब आज्ञा दीजिए।

[हाथ जोडकर नमस्कार करते हुए बाईं ओर से जाना।]

बूढ़ा—(उसी ओर देखता हुआ) पंद्रह साल के अनुभव का गर्व है आपको ! पूछो, किया क्या इतने साल तुमने ? सिर्फ अपनी जड़ ही तो मजबूत की आपने ? अपना घर ही तो भरा ? अब वे दिन लद गए जब जनता को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करते थे ऐसे लोग। इस बार मुँह की खानी ही होगी।

[पहले दरवाजे से बूढ़े का जाना। दूसरे दरवाजे का परदा उठता है। कपूर इत्यादि दूर पर दिखाई देते हैं। उसी द्वार से उनका प्रवेश। पहले दरवाजे को बंद देखकर]

कपूर—(पांडेय से) भटनागर का मकान यही है ?

पां०—जी हाँ, जी हाँ. (पास जाकर) भटनागरजी ! (नेपथ्य से आवाज आती है - कौन ?) जरा बाहर आइए।

भटनागर—(बाहर आकर हाथ जोड़कर नमस्ते करके) ओह होऽऽ। मुझसे भी वोट माँगने आए हैं ?

कपूर—तुमसे तो वोट मिलेगा यार ! पर अपने चाचा से कह दो हमारे लिए। उन्हें पटाना ही है किसी तरह।

भट० -न, उनसे नहीं कहूँगा। कोस डालेंगे तुम्हें। तुम्हारे बहुत खिलाफ हैं। उनका नाम तो काट ही दो अपनी लिस्ट से।

वकील—किसी और से जोर पहुँच सकता है ?

भट०—व्यर्थ है।

कपूर—(दूसरे द्वार पर परदा पड़ा देखकर) जोशीजी होंगे ?

भट०—होना तो चाहिए। देखो, पुकारता हूँ। (द्वार के पास जाकर) जोशी जी महाराज ! जोशी जी ! (नेपथ्य से आवाज आती है—आया भाई ! आ रहे हैं। (कपूर के पास आकर) आप क्यों परेशान हैं इतने। आप तो होंगे ही।

कपूर—अरे यार, इस बार इतना आसान नहीं है एलेक्शन। सब तरह की तो बेईमानियाँ की जा रही हैं उस तरफ से।

पां०—हाँ, और क्या। पोस्टर वे निकाल रहे हैं। परचे छपाते हैं।

कपूर—अछूतों को शराब-ताड़ी का लालच दिया है जनाब ! एलेक्शन पंद्रह साल से लड़ता हूँ ; पर यह बस

खुराफात कभी नहीं किए। पैसे से वोट खरीदे जा रहे हैं। उस पर देशसेवक बनते हैं।

[जोशी जी मकान से निकलते हैं। रामनामी ओढ़े तिलक लगाए सिकुड़ते हुए। सब नमस्कार करते हैं।

जोशी—अच्छा, कपूर साहब हैं। कहिए, कुशल-मंगल ?

कपूर—सब दया है आपकी।]

भट०—हमारा वोट तो इन्हीं की तरफ है जोशी जी !

जो०—अच्छा, वोट के लिए कष्ट किया है आपने ? भाई, मुझे तो क्षमा करो। आप जानते हो कि हमारा उनका पुराना संबंध है।

कपूर—तो फिर एक वोट मुझे दिलाइए कहीं से। हमारा भी आप पर अधिकार है कुछ।

वकील—पर आपने निश्चय करने में जल्दी की थोड़ी।

जो०—(कुछ सोचते हुए एक बार वकील की तरफ देखकर) अच्छा, आप इतमीनान रखें। एक वोट दिलवाऊँगा आपको।

कपूर—धन्यवाद। (अपनी लिस्ट देखने लगता है)

[जोशी और भटनागर नमस्कार करके पहले और दूसरे द्वार से जाते हैं। सामने से गुप्त का प्रवेश। रिटायर्ड आदमी है, एकांतवास करता है। नदी-स्नान करके लौट रहा है इतनी देर को।]

कपूर—(उसे देखकर) नमस्कार गुप्त जी। हम लोग सेवा में आ ही रहे थे।

गुप्त—वोट के लिए ? भाई मैं तो एकांतवासी हूँ।

वकील—साहब, इस समय तो आपको हम पर दया करनी होगी।

गुप्त—(हाथ जोड़कर) भाई मुझे क्षमा करो। तुम मित्र हो, वह अपने लड़के का साथी है, शिष्य है। मैं न इधर न उधर।

वकील—तो अपने सुपुत्र से ही कह दीजिए।

गुप्त—न, यह भी नहीं करूँगा। वोट सबको अपनी इच्छानुसार देना चाहिए। यही इसका उद्देश्य है।

[गुप्त जी हाथ जोड़ कर आगे बढ़ते हैं]

वकील—(घड़ी देखता हुआ) अच्छा, तो ग्यारह बजता है। अब इस समय तो चलने दो। फिर शाम को आ जाऊँगा।

कपूर—ऐं! अच्छा! अच्छी बात है। पर शाम को आइएगा जरूर। आप भी जाइए पांडेय जी। पर आप दोपहर को आयँगे?

पां०—(हाथ जोड़कर) बहुत अच्छा। अवश्य आऊँगा।

कपूर—मैं जरा वर्मा से कुछ बातें कर लूँ। दो बजे तक आप आ जायँ।

[पांडेय सर हिला कर स्वीकृति देता है। कपूर नमस्कार करके युवक को साथ लिए बाईं ओर जाता है। दोनों उसी तरफ देखते हैं।]

वकील—बड़ा घाघ है यार, पक्का मतलबी।

पां०—(तटस्थ रहकर) सारी दुनिया ऐसी है।

वकील—अजी यह सबसे बढ़कर है। कल कह रहा था—दावतें करवाऊँगा, अनाज की दूकानें खुलवा दूँगा। पानी की तरह पैसा बहा दूँगा। पचास-पचास का एक वोट

मिले तो भी कोई हर्ज नहीं। आपकी तो चोटी उसके हाथ में है। बराबर मिलते रहिए।

पां०—मिल तो रहा हूँ बराबर। पर अभी दो हफ्ते पड़े हैं। कहाँ तक दौड़ूँ? मिश्र जी अपने सगे-संबंधी हैं। पेट के पीछे उनसे भी बैर करना पड़ रहा है।

वकील—नौकरी गुलामी ही तो है। खैर भुगत लीजिए एक महीना कटा है तो यह पंद्रह दिन भी कट ही जायँगे। मुझको इनसे बराबर काम मिलता रहता है। इसीलिए इतनी दौड़धूप कर रहा हूँ।

पां०—कुछ आशा है इनकी?

वकील—बस, चार आने भर। देखते नहीं, कितना बदनाम हैं? और करते भी क्या हैं सिवा खाने-पीने के? इस बार पाँसा पलट कर ही रहेगा।

पां०—उन्हें भी डर है यही।

वकील—होगा जरूर। पंद्रह साल का अनुभवी है कि नहीं। (मुस्करा कर) और क्या! आइएगा दोपहर को?

पां०—आना पड़ेगा।

[दोनों नमस्कार करके दाहने और बाएँ द्वार से जाते हैं। कपूर का वर्मा के साथ प्रवेश।]

कपूर—देखते हो मिस्टर वर्मा। हमारे यहाँ का हाल? कोई सच्चा हमदर्द नहीं है। तुम मिश्र के साथी हो; पर हमारे पड़ोसी और संबंधी। मेरी तरफ से काम करना होगा तुम्हें।

वर्मा—मैंने तो आपसे कहा, मुझे हेडमास्टरी दिलवा-

इए। काम मैं करूँगा। मिश्र जी के सभी साथी मेरे दोस्त हैं। मुझ से बाहर नहीं जा सकते किसी तरह।

कपूर—(कुछ सोचते हुए) अच्छा शाम को बताऊँगा। इस समय तो चलने दो। लोग इंतज़ार कर रहे होंगे! शाम को दावत है आना तुम भी।

[वर्मा हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है। कपूर का दाहने द्वार से जाना।]

वर्मा—घूस देना चाहते हैं मुझे, एक पोस्ट ग्रेजुएट को जिसने पचीसों बार यूनीवर्सिटी के एलेक्शन लड़े और जीते हैं। चलो, पांडेय जी से खटपट हो जाय इनकी। फिर तो पौ बारह हैं। दावतें करके एलेक्शन जीतने के दिन गए अब।

[हँसता हुआ जाता है।]

प्रारम्भ

स्थान—घनी बस्ती के भीतर चारों ओर से घिरा हुआ एक छोटे मकान का कमरा। तीन दरवाजे बाहर की ओर हैं जिनमें बीच का खुला है। बायीं तरफ द्वार भीतर को खुलता है। कमरे में एक तखत पड़ा है जिस पर लिखने की छोटी मेज है। दो-एक मामूली होल्डर और पेंसिलें तखत पर पड़ी हैं। एक आदमी के बैठने भर जगह छोड़ कर सारा तखत किताबों, कागजों और फाइलों से भरा पड़ा है। दो चार चिट्ठियाँ इधर-उधर बिखरी हैं। मेज के नीचे किताबें लापरवाही से खिसका दी गई हैं। एक ओर दो टूटी कुर्सियाँ हैं और एक छोटी रैक जिस पर किताबें और पत्र-पत्रिकायें बड़ी बेतरतीबी से पड़ी हैं।

दीवारों पर कीले त्रिकोण बनाती हुई इस ढंग से लगी हैं जैसे कभी इन पर तसवीरें टाँगी गई थीं।

पात्र—चद्रकेतु—लगभग तीस वर्ष का युवक। इकहरा बदन, गेहुआँ रग, धोती कुरता पहने, काले फ्रेम की ऐनक लगाये। मुख मलीन हो रहा है जैसे जीने का उत्साह शेष न रह गया हो। हाई स्कूल में हिन्दी का अध्यापक है। कई पुस्तकें लिखकर साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश पा चुका है।

लीला—चौबीस वर्ष की युवती। दो बच्चों की माँ। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें। मुँह उतरा हुआ। धोती पहने है। अध्यापक की पत्नी, पढ़ी लिखी।

राजेन्द्र—पचीस वर्ष का युवक। हाफ शर्ट और पतलून पहने, पैर में चप्पल। बड़े बड़े बाल लापरवाही से बहे हुए। मस्ती और बेफिक्री की हँसी से चमकता चेहरा।

समय—रविवार का दिन। ग्यारह बजे का समय। अक्टूबर का महीना। एक बनियायन कमीज में आराम मिलता है।]

चन्द्रकेतु—(तखत पर मेज के सामने गाल पर हाथ रखे बैठा है) साहित्य सेवा में आनेवाली बाधाओं से परिचित होने के पश्चात् ही मैं इस पथ पर अग्रसर हुआ! अब भी कठिनाइयों का सामना करने को तैयार हूँ। परंतु न जाने क्यों दृढ़ता साथ छोड़ती जान पड़ती है। तो क्या मुझे अपना निश्चय तोड़ना पड़ेगा?

लीला—(प्रवेश करके)—कदापि नहीं, कठिनाइयाँ और बाधायें इतनी आसानी से हमें नहीं जीत सकतीं।

चंद्र०—(ताकता हुआ)—संताप का ज्वर टूटा?

ली०—तीन हो गया है। (सिहर कर) बकना बंद है। सोता नहीं है; पर आँखें मूँदे है, शायद कमजोरी से।

चंद्र०—(कुछ सोचता हुआ) और कला?

ली०—सो रही है। बुखार नार्मल है। उसी की चिंता है। दूध पीती नहीं, फल मिलते नहीं।

चंद्र०—'मिलते नहीं' क्यों कहती हो? कहो, हम दे नहीं सकते। मिलता क्या नहीं है? सब कुछ तो मिल सकता है, केवल .. ..।

लीला—(उसके दुख का अनुमान करके बात काटती हुई) मेरा मतलब यह था कि बुखार टूटने पर फल और दूध

दोनों नहीं भाते। उठते ही खाने को माँगेगी; पर अनाज कैसे दिया जाय अभी ?

चंद्र०—डाक्टर से पूछा जाय कुछ और देने को ?

ली०—क्या करोगे जाकर ? वह बतायगा ही क्या ?

चं०—मैं जाना भी नहीं चाहता। उसकी सूरत से घृणा है मुझे। कंबख्त ! पैसे को पूजते हैं। घंटों बैठे रहो; देखकर भी नहीं देखते। अंधे। दूसरी तरफ देखते हुये तीन कोने का मुँह बनाकर न जाने कैसी झल्लाहट से बातें करते हैं ! मनुष्यता तो जैसे छू नहीं गई इन्हें। स्वयं बाल-बच्चे।

ली०—ऊँह, यह तो दुनिया है। अपना-अपना सभी देखते हैं। छोड़ो इन बातों को। तुम्हारे मित्र आये थे। क्या कहते थे ?

चं०—हाँ, एक खुशखबरी सुनाने आया था। उसके आफिस में एक जगह है। अस्सी मिलेंगे। कहता था; चाहो तो आ जाओ।

ली०—उन्हें क्या मिलता है ?

चं०—नब्बे पाता है। ऊपर से तीस-चालीस की आमदनी हो जाती है और यहाँ हिंदी की मास्टरी। एम० ए० पास करने के बाद चालीस की नौकरी ! सो भी अपमान के साथ !

ली०—तो क्या कहा उनसे ?

चं०—कहा—मैं तैयार हूँ ! कहाँ तक रगड़ूँगा चालीस रुपट्टी पर ? खाने का खर्च भी तो नहीं चलता इतने में।

फिर कपड़े-लत्ते, रहना सहना, दुख-दर्द, लेन-देन, दुनियादारी सभी कुछ तो सम्हालना है।

ली०—मेरी राय तो नहीं कि तुम जाओ।

चं०—तो क्या करूँ ? बच्चों को जरा-सी दवा के लिए तड़पते देखूँ ? अंगूर के एक दाने के लिए ज्वर में रोता-मचलता देखूँ ?

लीला—(अपने स्वर को सम्हाल कर) हाँ, थोड़े दिन धैर्य और धरो। अपने ये दिन, किसी के दिन भी एक से नहीं रहते।

चं०—क्या करती हो तुम ? मैं स्वयं सब कुछ सह सकता हूँ। अधिकारियों की झिड़कियाँ, सहयोगियों की व्यंग्योक्तियाँ, विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों की अवहेलना, मित्रों की भर्त्सना, सभी कुछ तो सह रहा हूँ। पर बच्चों का दुख नहीं देखा जाता।

ली०—(स्नेह से)—बच्चों की चिन्ता तो मुझे भी है; पर मैं अपनी स्थिति से असंतुष्ट नहीं। तुम्हीं इतनी जल्दी क्यों विचलित होते हो ?

चंद्र०—तुम्हारा भार भी तो मुझ पर ही है। तुमने तो बच्चों की चिंता कर ली और मेरी भी। छल्ला-छल्ला हँसते-हँसते बेच दिया। पुराने वस्त्रों से न जाने कैसे और कबसे काम चला रही हो। पर मुझमें तो यह साहस नहीं, धैर्य नहीं।

ली०—कैसी बहकी बातें करते हो ? पुरुष होकर साहस की कमी ? अधैर्य की चर्चा ? तुम्हीं ने तो मातृ-भाषा-सेवा-

व्रत लिया था ? तुम्हीं ने तो मुझ अशिक्षिता को शिक्षा दी है ? दूसरे विद्यालयों के हिंदी अध्यापकों को नौकरी छोड़ते देख तुम्हीं ने तो मातृ-भाषा के प्रति उनका कर्तव्य समझाया था ? और आज ऐसी बातें कर रहे हो ?

चंद्र०—बातें क्या खुशी से कर रहा हूँ ? देखता हूँ कि कि मुझसे तो सभी अच्छे हैं। जिन्हें कल पढ़ाया था, आज वे ही मुझसे चौगुना पैसा पाते हैं। मुझे उनसे कभी ईर्ष्या नहीं हुई, आज भी नहीं है। पर अब तो कठिनाइयाँ दिन पर दिन बढ़ती ही जाती हैं।

ली०—(हँसकर) कठिनाइयों की भली चलाई तुमने ? और सेवाव्रतधारियों की यही तो सहचरियाँ हैं। इनका तो जीवन भर का साथ है; इनसे क्या घबड़ाना ? इन्हीं से तो व्यक्ति की परीक्षा होती है, संसार में।

चंद्र०—परीक्षा क्या जीवन भर होगी ? बहुत परेशानियाँ झेलीं। अब तो .. .. ।

ली०—(मुस्कराती हुई)—अभी कच्चे हैं आप ? कमजोर विद्यार्थी का आप कब पास करते हैं ? रखिये इन बातों को। अपने सेवा पथ पर हमें आगे ही बढ़ना है ?

चंद्र०—पर वह तो अर्जी टाइप करने गया है। आता ही होगा।

ली०—आने दीजिये, मैं निबट लूँगी उनसे। अभी आती हूँ; जरा देख आऊँ दानों को।

[लीला का बाएँ द्वार से जाना। चन्द्रकेतु तख्त पर बैठकर अपनी एक पुस्तक उठा लेता है। उस पर छपा अपना नाम एकटक

देखने लगता है। फिर अनमने भाव से पुस्तक मेज पर रख देता है। राजेन्द्र का प्रवेश। चंद्रकेतु उठकर एक कुर्सी खिसका देता है। पुस्तक की ओर देखते हुए राजेन्द्र कुर्सी पर बैठता है।]

राजेन्द्र—(हाथ में अर्जी लिए अहसान जताते हुए) लीजिए जनाब, दस्तखत करेंगे आप, या वह भी मैं ही कर दूँ ? तुम्हारा ऐसा तो आदमी ही नहीं देखा। मैंने तो हजरत के लिए कितना कहा सुना साहब से और आपके मिजाज ही नहीं मिलते ? (कलम जेब से निकाल कर बढ़ाता हुआ) लीजिए।

चंद्र—(कागज ले लेता है पर कलम नहीं) तुम तो जैसे हवा पर सवार आये हो। जरा सोचने-समझने दो, सलाह ले लेने दो। अभी तो दिन भर पड़ा है।

राजे०—(कमरे की अस्तव्यस्तता को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ) जी हाँ, बड़ी खुशी से। पर सिद्धांत-विद्धांत की बात न कीजियेगा मेरे सामने, इतना कहे देता हूँ। सोंचना है तो उस कमरे की बात सोंचिये जिसमें मोहन के घर जाकर बैठे थे। कैसा जगमग कर रहा था ! आँख ठहरती थी एक-एक तसवीर पर ! वे गद्देदार कुर्सियाँ, आदमकद शीशे, रेडियो, फोन, सितार .....।

चंद्र०—(लंबी साँस लेकर, पर साथ ही मुस्कराता हुआ) और तुम्हारे कमर की क्यों न सोचूँ ? सवा सौ से ऊपर की आमदनी; पर कहीं रौनक नहीं, कहीं .....।

राजे०—(कुछ चिढ़कर)—अभी नहीं कुछ दिन बाद

देखना मेरा कमरा। अभी तो शुरुआत है। साल भर में ही काया पलट न हो जाय तो कहियेगा।

चंद्र०— (उसे शांत करने के उद्देश्य से) मेरा मतलब यह था कि दोनों बच्चे बीमार हैं, चित्त ठिकाने नहीं है। जरा सुचित्त होने पर उत्तर दूँगा। मैं क्या समझता नहीं कि तुम मेरे ही लिए परेशान हो, मेरी ही भलाई की बात कहत हो।

राजे०—(सहानुभूति से) भाई मेरे, तब इतने सोच बिचार की क्या बात है ? नौकरी गुलामी है, मै समझता हूँ। पर अध्यापक रहकर भी तो तुम गुलाम हो।

चंद्र०—पर इसमें मुझे सुख है। मेरी बात सुनने वाले तो हैं। देश के सैकड़ों होनहारों के मन मे मातृ-भाषा-सेवा का मंत्र फूँकते रहना व्यर्थ नहीं जायगा, यह मेरा पूरा बिश्वास है।

राजे०—जी हाँ। तो वे अपका घर भर देंगे ?

चंद्र० -घर भरना ही तो सब कुछ नहीं हैं।

राजे०—(सावधान करता हुआ) तो आप यह बात गाँठ बाँधे कि आपके इन उपदेशों का कोई असर नहीं होने का। आप नवे और दसवें दर्जे में पढ़ाते हैं। आपके बहुत कुछ सिर पर पटकने पर ज्यादा से ज्यादा यह होगा कि पाँच प्रतिशत विद्यार्थी इंटर में हिंदी ले लेंगे और इसके बाद ? बस, वही रफ्तार बेढंगी। इससे अधिक आशा आप उनसे न रखें। और जो एकाध मूर्ख आपकी बातों में आ भी गये; तो उनकी वही दशा होगी जो आज आपकी है।

[चंद्रकेतु उसकी ओर ताकता है, जैसे उसके कथन की सचाई का समर्थन कर रहा हो]

राजे०—(पुनः) मैं तुमसे ही पूछता हूँ कि कि सात आठ वर्ष की अध्यापकी में इससे अधिक तुम क्या कर सके ? तुम्हारे साथ के पढ़े अफसर बन गए और तुम वही तेली के बैल, जहाँ के तहाँ !

चंद्र—(उदासीनता से) परंतु मुझसे क्लर्की नहीं होगी। थोड़ा पाता हूँ चैन तो है।

राजे०—यही संतोष तो हमारे देश को ले डूबा जनाब !

चंद्र०—पर संतोष ही सबसे बड़ा धन है।

राजे०—(खीझकर) यह कोरे सिद्धांत की बात है यार ! प्रत्यक्ष जीवन के संघर्ष में ऐसी बातों से काम नहीं चलता। सच कहना, हो तुम अपनी स्थिति से संतुष्ट ? न पत्र पत्रिकाएँ मँगा पाते हो, न संस्थाओं का शुल्क भेज पाते हो, न पुस्तकें खरीद सकते हो, न सभा सोसाइटी में जा पाते हो। यह सब क्यों ? पैसे की कमी से ही न ?

चंद्र०—मैं तो बराबर कुछ न कुछ खरीदता ही रहता हूँ।

राजे०—माना, तुम अपना पेट काटकर खरीदते पढ़ते हो ; पर कैसे और कितना ? क्या नित्य ही तुम्हें इनके लिए मन मारकर नहीं रह जाना पड़ता ?

चंद्र—(निर्लिप्त भाव से) फिर भी क्लर्कों की तरह पिसकर अपना जीवन मैं नष्ट नहीं करना चाहता। कैसा निर्जीव, शुष्क और निष्ठुर जीवन है !

राजे०—(हँसता हुआ) यह भय अज्ञानता का फल

है। क्लर्की डगावना हौआ नहीं है। एक तो हिंदुस्तानी अफसरों ने उसे बिगाड़ रखा है; क्योंकि नियम-संयम, उद्देश्य-आदर्श का उनमें अभाव है और दूसरे, दुनियाँ भर का कूड़ा-कचरा क्लर्क बन गया है। अक्ल के इन दुश्मनों के लिए हां क्लर्की नरक है। श्रीमतीजी की क्या राय है इस मामले में ?

चंद्र०—पहले तो वे स्वयं नित्यप्रति ऐसा ही कोई न कोई प्रस्ताव किया करती थीं; रोज यही रोना रहता था—इतने में कैसे काम चलेगा ? जिंदगी तरबाद हो गई तुम्हारे साथ। और न जाने इसी तरह की कितनी बातें आते-जाते सुनाती थीं। परंतु... ।

राजे०—(विगत कष्टों को याद करके ठंडी साँस लेता हुआ बात काटकर) निर्धनता है भी तो जीवन में अभिशाप ही। खाने पहनने की उम्र में दोनों को तरसना पड़े ! कितने दुख की बात है !

चंद्र०—हाँ, परंतु मेरी दो एक पुस्तकों की प्रशंसा पढ़कर उनका मत बदल गया है। अब मैं इस जीवन से ऊब गया हूँ, पर वे मुझे बराबर उत्साहित करती रहती हैं। स्त्री की अद्भुत शक्ति के संबंध में पढ़ा करता था। अब नित्यप्रति उसके सामने झुकता हूँ। तुम्हारी चर्चा मैंने उनसे कर दी है। मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार हूँ, उन्हें मना लो। मुझे तो केवल एक बात की चिंता है कि लिखने पढ़ने की जो सुविधा मुझे आज है, वह उस समय क्या रह जायगी ?

राजे०—मैं कहता हूँ बढ़ जायगी।

चंद्र०—वातावरण के अभाव में, मुझे भय है, मैं कुछ न कर सकूँगा।

राजे०—यह लचर दलील। इच्छाशक्ति के सामने ।

ली०—(प्रवेश करके) दलील तो लचर नहीं है ; पर परिस्थिति ने इनका चित्त चंचल कर रखा है इधर।

चंद्र—संतोष सोया ?

ली०—जान तो पड़ता है। पहले कराह रहा था, अब चुप है। कला भी सो रही है। (राजेन्द्र से हाँ तो, आपकी सम्मति में इन्हें अध्यापकी छोड़कर क्लर्की कर लेना चाहिए ?

राजे०—निश्चय ।

ली०—किस लाभ की आशा से ? क्या केवल इसलिए कि उससे इन्हें दुगुना पैसा मिल जायगा ?

राजे०—पैसा ही आज शक्ति है। जोड़ने के लिए पैसा मत कमाइए, पर जीने के लिए तो वह चाहिए ही। इसे तो मानेंगी ही ?

ली०—मानती हूँ। पर जीने भर को ये पा लेते हैं। चालिस रुपये शांति के समय थोड़े नहीं होते। हमारे देश में एक आदमी प्रतिदिन दो आने पाता है।

राजे०—इसी को मैं लचर दलील कहता हूँ। आपके बच्चे आज बीमार हैं पर आप दवा नहीं कर सकतीं। क्या पैसे की यह कमी आपको खटक नहीं रही है ?

ली०—मातृत्व की कोमल भावना पर आज पहली ठेस लगी है और उसी से मैं तिलमिला गई हूँ। कुछ देर पहले मैं स्वयं सोच रही थी कि इन्हें दबाकर क्लर्की करा दूँ, पर,

इतनी देर अपने बच्चों के सिरहाने रहकर दुर्बलता दूर हो गई है।

[राजेन्द्र चकित भाव से चंद्रकेतु की ओर देखता है और चंद्रकेतु गर्व से राजेंद्र की ओर। दोनों फिर लीला की ओर देखने लगते हैं।]

ली०—(चंद्रकेतु की ओर संकेत करती हुई) इनका ईश्वर पर विश्वास नही है। इनका कहना है कि बच्चे बिना दवा के ठीक नहीं हो सकते। परंतु.....।

राजे०—मै अब भी यह कहता हूँ कि प्रकृति के नियम बड़े निष्ठुर हैं; किसी के साथ दया नही करते। अपने बच्चों के साथ हमें कितनी निर्दयता दिखानी पड़ी है! उनकी कौन सी इच्छा आज तक हम पूरी कर सके हैं? बेचारे एक-एक पैसे के लिए तरस जाते हैं? जरा-जरा सी चीज के लिए उन्हें मन मारना पड़ता है। ऐसे जीवन से किसी को क्या मोह हो सकता है? और इन मुरझाये हुओं को ठीक भी कौन कर सकता है? प्रकृति की कठोरता के आगे हमें झुकना ही होगा; ईश्वर भी यदि कहीं है तो उसके निष्ठुर और कड़े चंगुल से हमें बचा नहीं सकता।

लीला—(पति से) मै भी तुम्हारे साथ ऐसा ही सोंचने लगी थी; पर मैं अब इन विचारों का समर्थन नहीं कर सकती। (राजेंद्र से, पति की ओर संकेत करके) अपने जीवन का एक आदर्श बनाया है इन्होंने और निश्चय ही वह ऊँचा है। इसे तो आप भी स्वीकार करेंगे।

राजे० -ठीक है और यह भी मानता हूँ कि जीवन का

लक्ष्य ऊँचा ही रहना चाहिए। पर सिद्धि के लिए धन से बढ़कर सुलभ साधन भी कोई नहीं है, यह आपको मानना होगा।

ली०—इतनी जल्दी मत कीजिए। महान कार्य के लिए महान शक्ति चाहिए। इतने ऊँचे आदर्श की मर्यादा निभाने के लिए न हममें शक्ति थी और न सहनशीलता। इसी से अपनी स्थिति में हम असंतुष्ट रहे। प्रथम परीक्षा में यही हमारी सबसे बड़ी असफलता थी।

[चंद्रकेतु की आँखें चमक उठतीं हैं। राजेंद्र का आश्चर्य बढ़ जाता है और लीला की मुद्रा अधिक गंभीर हो जाती है।]

ली०—(पुनः) अपनी असफलता स्वीकार करते आज मुझे गर्व होता है और विश्वास मानिये, इस असफलता का कारण मेरे हृदय में बार-बार तीव्रता से उठती धन की चाह ही थी।

राजे०—धन की चाह ? धन को आप बुरा समझती हैं ?

ली०—कदापि नहीं। धन ऐसी शक्ति है जिससे कितनों को ही जीवन दान दिया जा सकता है, पर धन में यह शक्ति आती है उस समय जब उसकी आसक्ति नष्ट हो जाय। इसके बने रहने तक मनुष्य विलासिता के चंगुल में फँसता जाता है। सांसारिक सुख-लिप्सा विलासिता की जननी है जो उच्चादर्श की ओर से मनुष्य को भटकाने के लिए जन्मती है।

राजे०—स्पष्टवादिता के लिए यदि क्षमा करें तो कहूँ कि व्यावहारिक दृष्टि से मेरी सम्मति में इन बातों का अधिक मूल्य नहीं है।

ली०—(हँसती हुई) अर्थात् यह दलील लचर है। क्यों न ? पर केवल उनके लिए जिनका जीवन में कोई आदर्श नहीं है, जिन्होंने अपना कोई ध्येय संसार में निश्चित नहीं किया है।

चंद्र० – (मित्र का पक्ष लेकर) समाज में रहकर धन की उपेक्षा कर नहीं सकता कोई।

ली०—मैं कब कहती हूँ कि उपेक्षा कीजिये। मैं तो उसका स्वागत करती हूँ; उसकी उपासिका हूँ। पर साथ ही इतनी आत्मिक शक्ति भी चाहती हूँ कि उसका अभाव मेरी प्रसन्नता न हर सके। जीवन में एकरसता बनाये रखने के लिए ...।

[अंदर से संतोष पुकारता है – अम्मा ? घबराकर तीनों भीतर की ओर देखते हैं। लीला तेजी से अंदर जाती है।]

चंद्र०—मेरे सामने दो बातें हैं—इन बच्चों की रक्षा या अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहना। मैं बच्चों की रक्षा चाहता हूँ सिद्धांतों की हत्या करके भी। मुझे इस समय धन चाहिए, कहीं से और कैसे भी आये। मैं अपनी आत्मा तक बेच सकता हूँ। बस इन्हें बचा दो किसी तरह। क्षण भर ठहरो अभी आता हूँ।

[बाहर की ओर खुले हुये द्वार से चंद्रकेतु का तेजी से जाना। राजेन्द्र कुछ समझ नहीं पाता, एक बार उठकर बाहर की ओर देखता है; फिर धीरे-धीरे कुछ सोचता हुआ चंद्रकेतु की जगह तख्त पर आ बैठता है।]

राजे०—(स्वतः गंभीर चिंता में) जीने का सवाल पहला

है या सिद्धांत रक्षा का ? मैं तो पहले जीने का प्रबंध करूँगा। जब जीवित ही न रहेंगे तो सिद्धांत किसके सामने होंगे ? (सामने पड़ी हुई पुस्तक उठा लेता और उलट-पलट कर देखता है) मेरे मित्र की रचना है। सरस्वती की साधना में लगा हुआ यह मेरा मित्र ! उदीयमान लेखक ! जीवन का रस चूसनेवाली क्लर्की करके भी ऐसी रचना वह कर सकेगा ? कठिन है। फिर पारिवारिक चिंताओं से मुक्ति कैसे मिले ? (कुछ सोचता है) पर ये रचनायें तो समाज की संपत्ति हैं। सभी का इनसे रंजन होना है। तब समाज ही इनके सुख-दुख का भार क्यों नहीं लेता ? (कुछ ठहरकर) ठीक तो है। समाज को ही इनकी चिंता करनी होगी; इनके बच्चों के भरण-पोषण का भार लेना होगा। (ठहर कर) हमारा भी तो इनके प्रति कुछ कर्तव्य है ? तब आज से इनका सारा भार मुझ पर रहा। सत्य ही क्लर्की इनका रस चूस लेगी, इनकी प्रतिभा कुंठित हो जायगी।

ली०—(प्रवेश करके परंतु पति को न पाकर) कहाँ गये वे ?

राजे०—बाहर गये हैं न जाने क्यों; बिना कुछ कहे चले गये।

ली०—बंधु ! तुमसे परदा नहीं है। प्राणप्यारी संतान को सभी सुखों से वंचित देखकर भी मैं उन्हें सरस्वती-सेवा के लिए उत्साहित करती रही; पर अब धैर्य साथ छोड़ रहा है। संतान की प्राण-रक्षा के लिए सिद्धांत तुड़वा दूँगी। भोले भाले बच्चों का कष्ट नहीं देखा जाता। रमेश की दशा न जाने

कैसी हुई जा रही है; बड़ा बेचैन हो रहा है वह। (आँखें भर आती हैं। मुँह फेर कर आँचल से पोंछती है।)

चंद्र० — (प्रवेश करके आवेग के साथ) डाक्टर के यहाँ जाना चाहता था, पर मार्ग से ही लौट आया। धन-लोलुप इन पिशाचों के आगे हाथ नहीं पसारूँगा। प्रकृति की निष्ठुरता मेरे बच्चों का प्राण ले सकती है; ले लेने दो। (लीला की ओर देखकर) तुम्हीं ने इसे प्रथम परीक्षा कहा है। तब मोह-ममता में फँसकर सरस्वती की शाश्वत साधना को कलंकित नहीं करूँगा। अब तो प्रसन्न हो तुम ?

[एक बार राजेन्द्र की ओर निराश दृष्टि से देखकर चंन्द्रकेतु तख्त पर अपनी जगह धम से बैठ जाता है। लीला आगे बढ़कर उसका हाथ थाम लेती है। तभी राजेन्द्र कुछ आगे बढ़ता है।]

राजे० — बंधु ! शांत। तुम्हारी साधना सफल हो। (अर्जी फाड़ डालता है।) बहन ! धीरज धरो। तुम्हारे बच्चे शीघ्र स्वस्थ होंगे। मैं डाक्टर को लेने जाता हूँ। (पुस्तक दिखा कर) तुम्हारी यह पुस्तक लिए जाता हूँ। दूँगा नहीं अब। जाओ तुम बच्चों के पास।

[उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बाहर की ओर चलदेता है। लीला पति की ओर, और चंन्द्रकेतु पत्नी की ओर आश्चर्य से देखते हैं।]

बचपन के साथी

[खूब सजा हुआ कमरा। सामने की ओर तीन दरवाजे; बाहर से तीनों पर नीली चमकदार गोट लगी चिकें लटक रही हैं और अंदर की तरफ उन्हीं पर अँगरेजी डिजाइन के परदे पड़े हैं। दरवाजों के ऊपर रोशनदान हैं जिन पर रंग-बिरंगे कीमती शीशे लगे हैं। तीनों दरवाजे खुले हैं। परदे एक ओर समेटे हुए हैं; पर चिकें पड़ी हैं। दाहिनी और बाईं ओर एक-एक दरवाजा है, सामने के शीशेदार दरवाजों की तरह। दोनों बंद हैं। इन पर चिकें नहीं हैं, पर परदे एक किनारे किए हुए हैं। पीछे की ओर एक द्वार है जिससे घर के अंदर जाते हैं। इस पर परदा पड़ा है और अंदर की तरफ चिक भी पड़ी है। इसे हम पीछे का दरवाजा कहेंगे।

कमरे में दोनों तरफ दो-दो बड़ी कोचें पड़ी हैं। उनके बीच में एक-एक गद्देदार छोटी कुरसी है और दोनों तरफ किनारों पर एक एक हत्थेदार कुर्सी। बाईं ओर एक तीन दराजदार बड़ी मेज है। उसी के पास आगे की तरफ एक छोटी मेज है जिस पर पान की कई खाने की चाँदी की तश्तरी रखी है। यह मेज बहुत हलकी है और इधर-उधर हटाई जा सकती है। सब कोचों का कपड़ा बिलकुल नया है और कुर्सियाँ भी नई चमकती हुई, पालिशदार हैं। बड़ी मेज की एक तरफ, उससे एक हाथ ऊँची छोटी चौकोर मेज पर रेडियो रखा है और दूसरी तरफ सेफ है।

पीछे की दीवाल में दो अलमारियाँ हैं, जिनके फ्रेम नीले पुते हैं और शीशे हरे हैं। इसलिए यह नहीं दिखाई देता कि अंदर क्या है। दोनों में बढ़िया, पर छोटे ताले पड़े हैं।

दीवारें पक्के हरे रंग से पुती हैं, छत गुलाबी रंग से। दो बड़े-बड़े सफेद ग्लोब के बल्ब छत से लटक रहे हैं। बीच में बिजली का छोटा पंखा है। दीवारों पर आमने-सामने सीनरी के तीन-तीन सुन्दर चित्र हैं और दाहिनी बाईं ओर दो-दो बड़े फोटो हैं। फर्श पर पूरे कमरे की दरी है और कोनों के बीच में कालीन बिछे हैं।

धीरेंद्र पच्चीस वर्ष का युवक, एम० ए० पास, स्कूल में अध्यापक। इकहरा बदन, गेहुँआ रंग, जो पिचके गालों में साँवला लगता है। सादी धोती मारकीन का कुरता जो धुला हुआ होने के कारण बुरा नहीं लगता, सस्ते दाम के कपड़े की चारखानेदार जवाहर वेस्ट, काफी दिनों की होने के कारण जिसमें कई जगह फुचड़े निकल आए हैं। नीचे के दो बटन इसके टूटे हैं। जेब में कुछ कागज दिखाई दे रहे हैं और हाथ में एक पेंसिल है जिसे कभी-कभी वह चबाने लगता है। बाल बड़े, पर रूखे।

समय—जाड़े का आरंभ। स्वस्थ व्यक्ति दिन में गरमी के कपड़ों से ही अभी काम चला रहे हैं।]

धीरेंद्र—(चकित दृष्टि से कमरे की एक-एक वस्तु देखता हुआ) कला के पुजारी और सरस्वती के उपासक निर्जन तपोवनों में किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य से ही वास करते थे। निरंतर साधना से उनकी ऐश्वर्य-लिप्सा कुंठित हो जाती थी। नहीं तो ऐसे सुसज्जित भवनों को देखकर क्या वे भी ईर्ष्या न करते ? (कुछ रुककर) पाँच रुपए किराए का मकान,

गंदा, सील से भरा, मेरे भाग्य की तरह जहाँ दिन भर अंधकार छाया रहता है ! (तिरस्कार की हँसी हँसकर) उसका भी तीन-तीन महीने से किराया नहीं दे पाता ! यही दुनिया है ! ऊँची-से-ऊँची शिक्षा पाई पर दोनों समय भोजन भी निश्चित होकर नहीं मिलना ! (कमरे की तसवीरों को देखकर) सातवें-आठवें तक पढ़ा यह गँवार, जिसे स्कूल में धोती बाँधना भी नहीं आता था, इतना धनी ! खूब ! (चेतकर) तो क्या यह कमरा दिखाने को ही इसने मुझे बुलाया है ?

[बाहर से किसी के आने की आहट सुन, उसी तरफ देखकर चुप हो जाता है। धनपति का प्रवेश। अवस्था तीस वर्ष की। रंग साँवला, पर चेहरा चमकदार। मोटा-ताजा, गोल-मटोल, कुछ कुछ बादी से फूला। बढ़िया महीन धोती, रेशमी कुर्ता, बाहें ऊपर को पलटे, सोने के बटन। बाल लंबे, काले, चिकने, पीछे को बटे। मुँह में काफी पान भरे। पैर में बढ़िया चप्पल, कलाई पर सोने की चैनदार चमकती घड़ी। हाथ में दो-तीन अँगूठियाँ।

धीरेंद्र उठकर मुस्कराते हुए नमस्कार करता है। धनपति प्रेम से हाथ पकड़कर उसे बड़े कोच पर बैठाता है और स्वयं छोटी कोच आगे खींचकर बेतकल्लुफी से उसी के पास बैठता है।]

धनपति—पंद्रह दफे हुजूर को बुलाया, तब सवारी आई है आपकी। (मुस्कराकर) हाँ भाई, गरीबों के यहाँ कौन जाता है ?

धी०—गरीब ! शाबाश ! कई दिनों से सोच रहा था आने को, पर समय नहीं मिलता और.....।

धन०—ओह होSSS, बड़े बिजी रहते हैं आप ? क्या

क्या कमा लिया आपने इतनी मेंहनत करके ? (उसके वस्त्रों की ओर एक बार देखकर जैसे अपने प्रश्न को अनुचित समझ) सुना, तुम कुछ किताब-उताब लिखने लगे हो ?

धी०—(सूखी हँसी हँसता हुआ) यों ही दो-एक छोटी-मोटी किताबें लिख मारी हैं।

धन०—तो क्या कहानी-वहानी लिखते हो ? मैंने भी सातवें-आठवें में पाँच सात कहानियाँ लिखी थीं। अब तो तुम खूब लिखने लगे होगे ! पहले ही तेज थे। पर कोई किताब तुमने दिखाई नहीं अपनी ? हो भाई, बड़े आदमी हो गए हो ! अब क्यों याद होगी पुराने दोस्तों की !

धी०—मैं ! बड़ा आदमी !

धन०—और क्या ? न कभी आना-जाना, न नाच-सिनेमा, न सैर-सपाटा। और बड़ा आदमी कहते किसे हैं, जिसके मिजाज ही न मिले !

धी०—क्यों बनाते हो यार ? मुझे इन सब बातों का शौक नहीं है। कालेज में रहकर भी मैंने कभी सिनेमा नहीं देखा।

धन०—ऐं ! सच ! अरे नहीं यार, हँसी मत करो।

धी०—मैं सत्य ही कह रहा हूँ। मेरा सिद्धांत है .....।

धन०—गोली मारो अपने सिद्धांत को। शाम को आज चलना होगा मेरे साथ सिनेमा। अँगरेजी खेल है, देखोगे तो आँखें खुल जायँगी।

धी०—(अनिच्छा से) मुझे तो क्षमा करो ; धन्यवाद।

धन०—बेकार की बातें मत करो। सुना, तुम दिन-रात

कोठरी में अपनी सड़ा करते हो, भले आदमी. जिंदगी के कुछ तो लुत्फ उठा ले ! जिंदगी पिसते रहने के लिए ही थोड़ी है। मस्त रहो, खूब खुशी मनाओ। देखें फिर कैसे यह सूखा चेहरा रह जाता है। तो चलोगे न ?

धी०—(चौंककर) सूखा चेहरा ! मेरा ! (अन्यमनस्क भाव से) देखा जायगा। कहो और क्या हाल हैं कारबार के ?

धन०—(उमंग से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर) खूब ठाठ हैं यार ! लड़ाई क्या हुई, भाग्य चमक गए। कई हजार का कर्जा था, सब निबटा दिया। अब बीस-पचीस की आमदनी हो जाती है रोज ! घर में पड़े-पड़े पलँग तोड़ता हूँ या मोटर पर घूमता हूँ। कभी-कभी (आँख मारकर) मन बहलाने भी निकल जाता हूँ। और क्या चाहिए जीवन में ? तुम्हें तो शौक होगा नहीं यह ?

धी०—(सूखी हँसी के साथ, पर संतोष के संयत स्वर में) कैसी बातें करते हो यार ! अपना चरित्र.. ...।

धन०—ऐसी-तैसी तुम्हारे चरित्र की। मर जाओगे दस दिन में, तो चरित्र देखेंगे आकर लोग तुम्हारा ! खा-पहन लो बाबू, जो कुछ खाना पहनना हो; नहीं पछताओगे बाद में। क्या पाते हो तुम ?

धी०—(संकोच से टालता हुआ सूखी मुस्कराहट के साथ) काम चलाने भर को पा जाता हूँ ; और मुझे चाहिए भी कितना !

धन०—(उत्सुकता से) तो भी ? डेढ़ दो सौ मिलते ही होंगे तुम्हें ?

धी०—हाँ और क्या ? (मुस्कराकर) खैर, इतना ही समझो। (बात बदलता हुआ) कहो, तुम्हारे मित्र आज-कल कहाँ हैं ? वही, पुराने !

धन०—कौन, कौशल ? यही आया हुआ है। तुमसे मिला नहीं ? कई दिन तो हो गए उसे आए ? रेलवे आफिस में हेड क्लर्क है। मिलते तो दो सौ हैं; पर इतने ही ऊपर से मार लेता है। खूब मजे में है यार। आता ही होगा।

धी०—(आश्चर्य से) हेड क्लर्क हो गया ? इतने ही दिनों में ? वह तो हम लोगों से जूनियर था।

धन०—(हँसकर) बाबू, दुनिया यह विचित्र है ; जूनियर-सीनियर नहीं देखती। आदमी ढग का हो ; सिद्धांत-सिद्धांत और चरित्र-चरित्र को ताख पर रखकर मैदान में कूद पड़े। बस, देखो क्या का क्या हो जाता है।

धी०—पर कौशल तो बड़ा सीधा था !

धन०—(व्यंग से) जी हाँ, बड़ा सीधा ! एक आप सीधे-सादे हैं तो समझते हैं कि दुनिया सीधी है। बड़े-बड़ों के कान काटता है वह। चुटकी में उड़ाता है अफसरों का। जैसा जमाना देखता है, वैसा काम करता है। (घडी देखकर) चार बजे की ट्रेन से हजरत को जाना है। तीन बज रहा है, पर अभी तक लापता हैं। जानते हो कहाँ गया है ?

धी०—(अनुमान से) बाजार-वाजार गया होगा।

धन०—हाँ, गया तो है बाजार, पर अपने लिए नहीं। साहब की मेम के लिए मिठाइयाँ और साड़ियाँ लेने। (उसके सुख का अनुमान करके गद्‌गद होकर) बड़े मजे में

है यार ! अपने साहब की मेम के साथ रोज घूमने जाता है। सिनेमा देखता है, ठाठ करता है। साहब और मेम दोनों की उस पर मेहरबानी है।

[धीरेंद्र चकित होकर उसकी कहानी सुन रहा है। धनपति की बात समाप्त होने पर भी कोई उत्तर नहीं देता। बाहर जूतों की आवाज होती है। मजदूर के सर पर गठरी लदवाए कौशल का प्रवेश।

कौशल किशोर—पच्चीस वर्ष का फैशनदार स्वस्थ युवक, गोरा रंग, भरे हुए गाल, स्वास्थ्य की लालिमा से युक्त। बड़ी-बड़ी सुंदर आँखें, काले फ्रेम का चश्मा जिन पर खूब खिलता है। रेशमी सूट पहने, टाई लगाए जेब में फाउंटेनपेन से दबा रेशमी रूमाल। हाथ में एक सफेद रूमाल लिए पसीना पोंछता हुआ। पैर में रेशमी मोजा और पतली टो का चमकदार शू।

मजदूर को कुछ पैसे ज्यादा देता है। वह सलाम करके जाता है।]

कौशल—(धीरेंद्र को देखकर) आख्खाहऽऽ, आऽऽप हैं ! बहुत दिन बाद दर्शन हुए जनाब के ! कहो, मजे में हो ? क्या कर रहे हो ?

धन०—(धीरेंद्र की ओर से) यही स्कूल में मास्टर हैं।

कौ०—तब तो (गर्दन हिलाता है) ठाठ होंगे यार !

धन०—(व्यंग्य से) जी हाँ, चारो तरफ हरियाली ही दिखाई देती है आपको !

धी०—ठाठ क्या जिंदगी कट रही है किसी तरह।

कौ०—(हँसकर) उड़ो मत मुझसे। मास्टरों की तो नस-

नस पहचानता हूँ। साल में चार महीने काम, बाकी छुट्टी। और काम भी क्या! जब चाहा पढ़ाया, नहीं कह दिया लड़को से, चुपचाप पढ़ो। है न ठीक?

धी०—(प्रसन्नता से जैसे अपने जीवन में कोई विशेषता उसे जान पडी हो) अच्छा, पहले यह तो बताओ क्या-क्या लाए हो अपनी मेम साहब के लिए?

कौ०—अपनी मेम साहब के चक्कर में पड़ते हैं मूर्ख, यहाँ तो अभी दुनिया का रंग-ढंग देखने-समझने में लगे हैं। पता तो हो जाय कि हमारी जरूरतें क्या हैं और अकेले रहकर भी पूरी हो सकती हैं या नहीं।

धी०—क्या सच! अभी तक शादी नहीं की तुमने!

कौ०—क्यों? ताज्जुब हो रहा है आपको?

धन०—जैसी ये चाहते हैं लड़की मिलती ही नहीं इन्हें।

कौ०—अच्छा, छोड़ो इन बातों को। मुझे देर हो रही है।

धन०—तो साहब कार तैयार है आपके लिए। देर लगाई आपने अपनी मालकिन के पीछे और नाराज होते हैं हम पर।

[धीरेंद्र और धनपति हँस पडते हैं। कौशल एक पोला घूसा धनपति की पीठ पर मारकर हँसता हुआ जाता है।]

धी०—सच! शादी नहीं की इसने?

धन०—आप चाहते हैं ऐसी लड़की जिसे सैर-सपाटे में ले जायँ, सिनेमा और नाच-रग में ले जायँ। लोग देखें, तो देखते ही रह जायँ और कहें ...।

धी०—(समझने का प्रयत्न करता हुआ) क्या ! ऐसी लड़की !

धन०—जी हाँ, कई जगह बात हुई। आपने कहा—लड़की हम खुद देखेंगे। दो-एक जगह तो मुझे भी पकड़ ले गए।

धी०—तुम्हें ! तुमसे क्या मतलब !

धन०—ऊँह हर्ज क्या है ? कह दिया, हमारे भाई हैं।

धी०—(अविश्वास की दृष्टि से देखता हुआ) इनके भी तो बहने हैं ?

धन०—अरे तो दुनिया भर का ठेका लिया है किसी ने ! जिस पर पड़ेगी भुगत लेगा।

धी०—(आवेश में आकर) और जो ऐसा मिले इन्हें कोई जो कहे हम तुम्हारी बहनों को नचवाकर देखेंगे, तो ?

कौ०—(हँसते हुए प्रवेश करके धनपति से) ड्राइवर नहीं है। बुलवाओ तो जरा। (धनपति जाता है। कौशल धीरेंद्र के पास आकर कोच पर बैठता हुआ) लात मारो स्कूल की नौकरी को। चलो साथ मेरे। देखो कितने ठाठ से कटती है जिंदगी। या बिजनेस करो कोई। पचास-साठ मिलते होंगे तुम्हें यहाँ ?

धी०—(दूसरी ओर ताकते हुए) हाँ, कभी-कभी मैं भी यही सोचता हूँ। पर .....।

कौ०—तो बस सोचते-सोचते मर जाओगे ! (उसका हाथ अपने हाथ में लेकर स्नेह से) अरे, धनपति को देखकर भी आँख नहीं खुलती तुम्हारी ? देखो, हराम की कमाई से

कैसा मोटा हो रहा है, गोल और चिकना दोनो (हँसता है)।

धी०—हाँ, पर घूस देते हैं, बेईमानी भी तो करते हैं ऐसे लोग।

कौ०—(व्यंग्य से) अच्छा तो सोना दबाए बैठे रहिए आप और मर जाइए एक दिन कुढ़ कुढ़कर। (प्रेम से) अच्छा, मेरे ही साथ चलो। देखो, दो-चार के अफसर हो जाते हो या नहीं साल ही भर में। मुझे तो मास्टरों से नफरत है; कोरे उपदेशक और बकवादी।

धी०—(हँसकर) मुझसे भी घृणा करते होगे तब तो ?

कौ०—और नहीं तो इन सूखी हड्डियों से कोई प्रेम करेगा, पागल ? (धीरेंद्र का हाथ पकड़कर) सच कहना, भाभी करती हैं तुमसे प्रेम ?

धी०—किसी के दिल की बात कौन जाने।

कौ०—बताओ-बताओ तुम्हें मेरी कसम।

धी०— (हँसता है) दिमाग खराब है, तुम्हारा। अरे प्रेम करेंगी नहीं तो जायँगी कहाँ !

कौ०—बेकार की बातें मत करो। कसम धराई है मैंने। देखो सच बताओ।

धी०—सच ही तो कह रहा हूँ कि प्रेम करेंगी नहीं तो जायँगी कहाँ; पर कभी-कभी मेरी स्थिति से असंतुष्ट हो जाती हैं।

कौ०—यही तो मेरा ख्याल है कि अपने साथ तुम उसे भी ले डूबे। भला खाने-पीने और सुख करने के ये दिन ! पचास-साठ तो मेरा सिनेमा का खर्च है सिर्फ !

पागल हो जो जिंदगी बरबाद कर रहे हो अपनी ! अच्छा तो कब आओगे मेरे पास।

धी०—तुम्हारी शादी में।

को०—जी, अपनी शादी में ऐसों को बुलाकर अपनी हँसी नहीं उड़वानी है मुझे।

नौकर - प्रवेश करके) बाबू बुलाय रहे हैं आपका !

धी०--मुझे ?

नौ०—तुमका नाहीं । (कौशल से) बाबू साहब का बुलाइन हैं। ऊपर हैं कोठे पर।

को०—आते हैं। अच्छा, एक बात सुनो।

नौ०--(पास जाकर) हुकुम सरकार ?

को०—(पाँच का नोट देकर) इसका मिठाई ले आओ जल्दी और घर में देना मालकिन को। (दूसरा नोट देकर) इसकी मिठाई पहुँचा देना इनके यहाँ। (धीरेंद्र की ओर संकेत करता है। एक रुपया और देकर) यह इनाम तुम्हारा।

[नौकर रुपया और नोट लेकर सलाम करके मास्टर की तरफ देखता है। कौशल 'अभी आया' कहकर बाहर जाता है। धीरेंद्र पैर फैलाकर पीठ के सहारे कोच पर बैठ जाता है।]

धी०—(नौकर से मुलायम स्वर में) सुनो जरा।

नौ०—(नाक-भौं चढ़ाकर) जी, कहौ।

धी०—(तिरस्कार का अनुभव करके) कुछ नहीं, जाओ।

नौ०—(क्षण भर रुककर नम्रता से) का हुकुम है।

धी०—हुकुम मेरा ! कोई काम नहीं है, जाओ तुम।

[नौकर कुछ सोचता हुआ जाता है। धीरेंद्र फिर सीधा होकर

बैठ जाता है। क्षण भर इसी तरह बैठा रहता है फिर उठकर खड़ा हो जाता हूँ। एक बार टहलकर द्वार तक जाता है और आकर अपनी जगह बैठ जाता है।]

धी०—दोनों की दृष्टि में मेरा, मेरी योग्यता का, मेरे व्यवसाय का कोई मूल्य नहीं. दोनों के लिए मैं मूर्ख हूँ; मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। पर मैं क्या हूँ, ये लोग क्या समझेंगे। खुशामदी टट्टू! समझते हैं चालबाज़ी और बेईमानी से पैसा पैदा करना ही जीवन की सफलता है। ऊँह! अपना आदर्श, अपना मार्ग। अच्छा करता हूँ जो दूर रहता हूँ इनसे, कभी मिलता-जुलता नहीं। इनसे दूर रहने में ही कल्याण है और तो और, टके का नौकर भी समझता है किसको 'सरकार' कहना चाहिए किसको 'बाबू'!

कौ०—(प्रवेश करके) अच्छा अब चलता हूँ। पर ज़िंदगी का लुत्फ उठाना हो तो आना जरूर मेरे यहाँ। (हाथ पकड़कर) कार तक तो आओ (दोनों का जाना)।

नौ०—(मिठाई का दोना लिए प्रवेश करके, चारों ओर आहट लेता हुआ) बाबू गए जानौ! (हँसता हुआ) हमहूँ का कबहूँ-कबहूँ बड़ी दूर की सूझ जात है। जान-बूझ कै देर लगावा हम और मिठाई लायन चारै रुपय्या की। (रुपया उन से उछालकर) अपनी अक्किल से कमावा है छिन्नै भर माँ रुपय्या एक। औ जरा मिठाई तो चक्खी। (एक ठौर मुँह में डालता है। नेपथ्य में किसी के आने का शब्द। झाँककर

देखता है) वहै मास्टरवा फिरै आवत है । (जल्दी से जाना) ।

धी०—(प्रवेश करके) यह जीवन है ! एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन कारें ! तीनों नई, चमकती हुई । यह व्यवसाय का फल है और एक मेरा ... । (नेपथ्य में आहट सुनकर चुप हो जाता है) ।

धन०—(प्रवेश करके) देखें ठाठ तुमने कौशल के जिसे तुम सीधा समझते थे ? कैसी बढ़िया तंदुरुस्ती है ! कितना रोबदार चेहरा ।

धी०—अपने-अपने भाग्य की बात है भाई ।

धन०—रहे तुम बछिया के ताऊ ही । अरे, अपनी यह दशा तुमने बना रखी है या तुम्हारे भाग्य ने ? बाबू ! दुनिया का धन मिलता है काम करनेवालों को, स्वप्न देखनेवालों को नहीं ।

धी०—यह तो ठीक है, पर....।

धन०—पर-वर कुछ नहीं; सीधी बात जानता हूँ । अगर समझते हो कि मेरा भाग्य सोता है तो मुझ पर छोड़ दो अपने को । जैसा कहूँ, वैसा करो । साल भर में ही देखो जमीन-आसमान का अंतर हो जाता है या नहीं ।

धी०—(मुस्कराकर) लालच मत दिलाओ यार ! मैं दुर्बल प्रकृति का आदमी हूँ फिसल जाऊँगा ।

धन०—(हँसता हुआ) भाई मेरे, चाहता हूँ कि तुम भी मजे उड़ाओ मेरी तरह । श्रीमती जी से भी अपनी उन्नति

में सहायता मिल सकती है तुम्हें और उन्हें कुछ करना-धरना भी न होगा।

धी०—(आशय न समझकर) क्या मतलब तुम्हारा ?

धन०—ठाट-बाट से खुद रहो, उन्हें भी रखो। बड़े आदमियों से मिलो-मिलाओ उन्हें। जरा हँसकर बात कर दें; बस बड़ा पार। सुना बड़ी सुंदर स्त्री मिली है तुम्हें ? (दूसरे कमरे में टेलीफोन की घंटी बजती है। अभी आया मैं; (उठकर भीतरवाले द्वार की ओर बढ़ता हुआ) जरा फोन सुन लूँ। (जाता है)।

धी०—(जिधर धनपति गया था, अचकचाकर उसी ओर ताकता हुआ) धनी देख लिया और अफसर भी। दोनों की चमक-दमक का कारण भी समझ लिया। सिद्धांत चरित्र, आदर्श जैसी बातों से कोई संबंध नहीं है इनका। (ठहरकर) नीचता और बेहयाई की भी हद हो गई। ईश्वर दूर ही रखे इनसे। मैं अपनी निर्धनता में ही सुखी हूँ।

धनपति—(प्रवेश करके मुस्कराता हुआ) रजिया ने बुलाया है। चलोगे ? बड़ा मजा रहेगा जो आज तुम भी साथ चलो ?

धी०—रजिया कौन ?

धन०—रूप की परी, सुंदरता की देवी।

धी०—(मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ) मुबारक रहें तुम्हें तुम्हारी देवीजी, मुझे तो आज्ञा दो। जरूरी काम हैं कई।

धन०—गोली मारो कामों को, आज मेरे ही यहाँ रहना

होगा। रात के दूसरे शो में सिनेमा चलेंगे रजिया को लेकर और उसके बाद स्वर्ग की सैर कराऊँगा तुम्हें। (आँख मार कर) देखा तो जरा दुनिया में मन बहलाने की कितनी चीजे हैं; और तुम मोहर्रमी ही बने हो।

धी० —(खड़ा होकर) इस समय तो चलने दो; फिर आ जाऊँगा किसी दिन।

धन०—तो ऐसी भी जल्दी क्या है ? चाय तो पीते जाओ और एक घूँट अंगूरी शरबत भी। एक ही घूँट में मस्त हो जाओगे।

धी०—शराब ? कैसा बातें करते हो यार ! (मुस्कराकर) किशोर से नहीं कहा तुमने ?

धन०—(खिलखिलाता हुआ) जी, ऊपर बुलाया किस-लिए था उसे ? सोचा, इसे अभी निबटा दूँ; तुम्हें रात को चखाऊँगा। पर तुम जा रहे हो।

धी०—(उठकर) तो फिर आऊँगा किसी दिन। (उसका हाथ पकड़कर) इस समय तो एक मिनट नहीं रुक सकता। क्षमा करना।

धन०—चाय तो पी लो ?

धी०—धन्यवाद। चाय अभी शुरू नहीं की है मैंने। आओ चलें।

श्री टंडनजी की चार नई आलोचनात्मक पुस्तकें

१—हिंदी-साहित्य का छात्रोपयोगी इतिहास—इस इतिहास में प्रारंभ से अब तक गद्य-पद्य की प्रगति का विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्य इतिहासों से इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भारतेंदु के पहले गद्य-काल की सारगर्भित विवेचना की गई है। मू० २॥)

२—गोपी-विरह व भँवरगीत—(सूरकृत) साहित्य-रत्न परीक्षा के लिए स्वीकृत १२१ पदों का सव्याख्या संकलन; कवि के जीवन और उनकी रचना-शैली पर लिखी गई भूमिका ने संग्रह को और भी उपादेय बना दिया है मू० १।॥)

३—प्रसाद के तीन नाटक—भारतवर्ष की प्रायः सभी उच्च-परीक्षाओं में स्वीकृत प्रसाद जी के तीन नाटकों—अजात शत्रु चंद्रगुप्त, और स्कंद गुप्त—की विस्तृत विवेचना; नाटकों के प्रायः सभी आलोच्य विषयों पर भली-भाँति विचार किया गया है। मू० लगभग २)

४—कामायनी मीमांसा—'प्रसाद' जी के अमर महाकाव्य पर अपने ढंग का अकेला लेख-संग्रह। मू० ।॥=)

इन पुस्तकों के लेखक—संपादक—हैं 'हिंदी-सेवी-संसार' के यशस्वी संपादक और उदीयमान आलोचक—

साहित्य-रत्न श्री प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०

अपने समीप के बुकसेलर से माँगिए अथवा हमें लिखिए—

विद्यामंदिर, चौक, लखनऊ.

लेखक की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

१. हिंदी लेखकों की शैली—हाई स्कूल और इंटर के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी पुस्तक ; प्रमुख गद्यकारों की शैली की विवेचना इसमें है और 'शैली' पर की गई आलोचना ने पुस्तक को अत्यंत उपयोगी बना दिया है। मू० ॥=)

२ प्रेमचंद : ग्राम-समस्या—अपने ढंग की पहली पुस्तक, ग्रामीणों की समस्या के साथ-साथ आप प्रेमचंद की रचना-शैली से भी परिचित हो सकेंगे। पढ़ने में आनंद किसी कहानी से कम नहीं। मू० ॥=)

३. प्रेमचंद : कृतियाँ और कला—विभिन्न दृष्टिकोण से लिखे गए अमर कलाकार की कला और प्रमुख कृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन ; कई प्रतिष्ठित आलोचकों के महत्वपूर्ण लेख इसमें संगृहीत हैं, मद्रास की 'विद्वान' परीक्षा के लिए स्वीकृत। मू० १॥)

४. साहित्यिकों के संस्मरण—प्रमुख साहित्यकारों के संबंध में लिखे गए रोचक और उपादेय संस्मरणों का प्रथम संग्रह, उपन्यास से भी अधिक रोचक। यू० पी० में हाई स्कूलों के लिए स्वीकृत हो चुका है।

सब प्रकार की पुस्तकें हमसे मँगाइए—

विद्यामंदिर, चौक, लखनऊ.